ओ३म्

इतिहास-दर्पण

इतिहासवेत्ता
वीतराग स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी

सम्पादक :
प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

इतिहास-दर्पण

(आर्यसमाज की चिनगारियाँ)

लेखक

इतिहासवेत्ता

वीतराग स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी

सम्पादक

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रकाशकः

स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोध संस्थान

वेद-सदन, नई सूरजनगरी, अबोहर (पंजाब) १५२ ११६

प्रकाशक : **स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोध संस्थान**
वेद-सदन, नई सूरजनगरी,
अबोहर (पंजाब) १५२ ११६

प्राप्ति-स्थान : **टङ्कारा साहित्य सदन**
आर्यसमाज, हिण्डौनसिटी-३२२ २३०

संस्करण : प्रथम, १९९७

मूल्य : तीस रुपये मात्र

शब्द संयोजक : **भगवती लेजर प्रिंट्स**
वेद-मन्दिर, इब्राहिमपुर, दिल्ली-३६

मुद्रक : **राधा प्रेस**
कैलाशनगर, दिल्ली-३१

समर्पण

जिसने महर्षि दयानन्द

के

बलिदान की परम्परा

को आगे चलाया,

मैं जीवनसुत राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज

के

लेखों के इस अनुपम संग्रह

को,

उस इतिहासवेत्ता धर्मधुरन्धर,

अमर धर्मवीर रक्तसाक्षी

पं० लेखरामजी 'आर्यपथिक'

की पावन स्मृति में

समर्पित करता हूँ।

प्राक्कथन

लेखक—स्वामी सर्वानन्दजी महाराज,
दयानन्द मठ, दीनानगर (पंजाब)

प्रो० राजेन्द्रजी 'जिज्ञासु' ने आर्यसमाज के कई नेताओं, विद्वानों, महात्माओं, हुतात्माओं व कार्यकत्ताओं की जीवनियाँ लिखी हैं। श्री जिज्ञासुजी आर्यसमाज के एक ऐसे लेखक हैं जो अपनी मिसाल आप हैं, अन्य नहीं। इनका तप, त्याग, कार्य इतना अधिक है जो प्रशंसा के शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता।

आर्यसमाज के इतिहास सम्बन्धी इनकी खोज और सूझ आश्चर्यजनक है। इन्होंने इतिहास के अथाह सागर की गहराई में जाकर उसके तल की घटनाओं को भी खोज निकाला है। इतिहास विषय की सामग्री का बहुत बड़ा संग्रह आपके पास है, जो इतिहास की एक अमूल्य निधि है।

पूज्यपाद सन्त शिरोमणि स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज इतिहास के एक जाने-माने विद्वान् थे। प्रो० राजेन्द्रजी 'जिज्ञासु' ने पूज्य स्वामीजी महाराज का जीवन-चरित भी लिखा है और अब स्वामीजी महाराज के प्रेरणाप्रद लेखों की खोज, संकलन व सम्पादन किया है। स्वामीजी महाराज प्रतिवर्ष तीन बार मठ में कथा किया करते थे। सदा नई-नई घटनाएँ और नये-नये उदाहरण दिया करते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में स्वामीजी महाराज ने हरियाणा का भ्रमण किया। हरियाणा सैनिक भरती का बहुत बड़ा क्षेत्र है। श्री स्वामीजी ने हरियाणा के जवानों को देश के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाने की प्रेरणा दी। उनके देश-प्रेम को उबारा। तब देश के अन्दर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन चल रहा था और देश से बाहर आजादहिन्द सेना देश को बन्धनमुक्त करने के लिए लड़ रही थी। श्री महाराज की इस ऐतिहासिक यात्रा में श्री जगदेवसिंहजी सिद्धान्ती व आचार्य भगवान्देवजी उनके साथ रहे। इनका कहना था कि स्वामीजी महाराज प्रतिदिन नया-नया इतिहास और नई-नई घटनाएँ सुनाते थे।

विख्यात शिक्षाविद् विद्यामार्त्तण्ड आचार्य प्रियव्रतजी कहा करते थे कि स्वामीजी महाराज को आर्यसमाज के इतिहास की छोटी-बड़ी घटनाओं का जितना ज्ञान था उतना और किसी को नहीं। आश्चर्य इस बात पर होता था कि यह सारा ज्ञान उन्हें उपस्थित था। डायरी या नोटबुक देखने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

भारत के प्राचीन इतिहास की बातें भी स्वामीजी महाराज यदा कदा सुनाया करते थे। एक बार प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार मठ में आये। आपने स्वामीजी महाराज से प्राचीन भारत के नगरों व प्रदेशों के नाम पूछे। स्वामीजी ने उनकी सारी समस्या का समाधान कर दिया और एतद्विषयक एक लेख भी पत्रों में प्रकाशित करवाया।

पं० चमूपतिजी एक अद्‌भुत लेखक, कवि व विचारक थे। आपकी स्वामीजी महाराज के प्रति असीम श्रद्धा थी। आप लाहौर में स्वामीजी महाराज से इतिहास-विषय पर घण्टों चर्चा किया करते थे। आपने लिखा है कि स्वामीजी को इतिहास की खोज का चस्का है। स्वामीजी महाराज को विभिन्न प्रदेशों, वर्गों व जातियों के इतिहास व रीति-नीति का सूक्ष्म ज्ञान था।

किस मत की कौन-सी बात कैसे आरम्भ हुई, कौन-सा मत कैसे पैदा हुआ, उसने संसार का क्या व कितना हित-अहित किया, विश्व पर कितना प्रभाव छोड़ा—इन सब बातों की विस्तृत विवेचना किया करते थे। श्रोता व पाठक स्वामीजी महाराज के गम्भीर ज्ञान को देख, सुन व पढ़कर आश्चर्य करते थे।

सिख इतिहास के भी स्वामीजी मर्मज्ञ थे। सिखमत किन परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ, क्या कारण थे, सिखपंथ कैसे बढ़ा, इसने देश के लिए क्या किया, कहाँ भूल की—सिख गुरुओं का वास्तविक मन्तव्य क्या था, लोगों ने इसे कितना समझा और देश पर इसका क्या प्रभाव पड़ा—इन सब बातों का उन्हें गहरा व प्रामाणिक ज्ञान था। जाने-माने सिख विद्वान् प्रिंसिपल गंगासिंहजी की प्रार्थना पर आपने सिख मिशनरी कॉलेज में सिख इतिहास पर एक सप्ताह तक व्याख्यान दिये। व्याख्यानमाला की समाप्ति पर जब प्रिंसिपल गंगासिंहजी ने प्रश्न पूछने को कहा तो सबने यह कहा कि हमें कोई शङ्का नहीं है। हमें स्वामीजी ने तृप्त कर दिया है। प्राचार्य जोधसिंहजी तो मठ में आकर आपसे बहुत विषयों पर चर्चा किया करते थे।

इतिहास की घटनाओं के कारणों व परिणामों को स्वामीजी महाराज बहुत अच्छे ढङ्ग से समझाया करते थे। एक बार उदार विचार के एक मौलाना ने जो आर्यविद्वानों के सम्पर्क में था, स्वामीजी के सामने कुछ शङ्काएँ रखीं। आपने मौलवीजी के सब प्रश्नों के उत्तर दिये। आपके विचार सुनकर उस मौलाना ने कहा इस्लाम-विषयक आपके गहरे ज्ञान से मैं बहुत प्रभावित हूँ। मैंने ऐसी युक्तियुक्त

प्रामाणिक बातें कभी नहीं सुनीं। हमारे मौलवी इतनी गहराई में जाते ही नहीं।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध इतिहासकार, लेखक, विचारक और त्यागी तपस्वी विद्वान् प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' आर्यसमाज के लिए बड़ी तड़प रखनेवाले हैं। आपने इस 'इतिहासदर्पण' ग्रन्थ के लिए बहुत परिश्रम किया है। इस अद्भुत पुस्तक में विभिन्न समयों में लिखे गये स्वामीजी महाराज के लेखों का संग्रह किया गया है। इस पुस्तक के पाठ से आबाल वृद्ध को नई स्फूर्ति व मार्गदर्शन प्राप्त होगा। पाठकों को आर्यसमाज के इतिहास के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी बातों का ज्ञान होगा जो लोगों ने कभी न सुनी हों और धर्म-कर्म के बारे में बहुत-सी शङ्काओं का भी समाधान होगा।

प्रो० 'जिज्ञासुजी' ने बहुत दूर-दूर से विभिन्न विद्वानों, संस्थाओं व समाजों के पुस्तकालयों में जा-जाकर इन लेखों की खोज की। मुझे तो बड़ा आश्चर्य होता है कि जो बातें धर्म और इतिहास के बारे में हमने कभी सुनी ही नहीं थी, वे बातें इन्होंने खोज निकाली हैं, जो इस पुस्तक में संगृहीत हैं।

यह पुस्तक स्वाध्यायशील लोगों के लिए एक बहुत बड़ा कोश है, जिससे रत्न मिलेंगे। ज्ञानीजन भी गद्गद होंगे। यह पुस्तक प्रत्येक मनुष्य के पढ़ने योग्य है। साधारण व्यक्ति हो अथवा विद्वान्, वृद्ध हो या जवान सबके लिए यह पठनीय है।

प्रत्येक गृहस्थी के घर में यह पुस्तक होनी ही चाहिए। आर्यसमाज क्या है? इसने क्या किया और यह क्या करना चाहता है। इसके पाठ से इन सब बातों का पता चलेगा। विद्वानों को भी इसके पाठ से सोचने-विचारने के लिए कई राहें मिलेंगी, जिससे इससे आगे भी सोच सकें।

अबतक देश के नेताओं ने इसे कैसे चलाया है, क्या परिणाम हुआ और आगे कैसे चलाना है। देश व समाज के प्रति कर्त्तव्य का आज लोगों को बोध नहीं है। कर्त्तव्य-बोध करवाने के लिए यह पुस्तक पठनीय है। किसी भी आयु व किसी भी योग्यता का पाठक क्यों न हो, इससे कुछ-न-कुछ मिलेगा, अतः यह पुस्तक संग्रह योग्य व पठनीय है।

महात्माओं का अनुचर
सर्वानन्द सरस्वती
दयानन्द मठ, दीनानगर

आमुख

आर्यसमाज के कई मूर्धन्य विद्वानों ने कई बार मुझे आग्रहपूर्वक कहा कि पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज के आर्यसमाज के इतिहास-विषयक लेखों की खोज व सङ्कलन करके इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाऊँ। यह कार्य कोई सरल नहीं। लेखों की खोज समय माँगती है। स्वामीजी साधु थे। जब मौज आती थी किसी तपस्वी, बलिदानी, समर्पित, चरित्रवान् कार्यकर्त्ता व विद्वान् पर कुछ लिख दिया करते थे। एक और भी समस्या थी कि श्री महाराज के ऐसे लेख एक ही पत्र में तो छपते नहीं थे। कभी किसी उर्दू साप्ताहिक को लेख भेज देते थे और कभी 'आर्य' मासिक आदि पत्रों में।

इन लेखों की खोज में ही कई वर्ष लग गये। यह लेख किसी एक पुस्तकालय में सुरक्षित होते तो कोई भी यह कार्य कर सकता था और कर देता, परन्तु देशभर में घूम-घूमकर अधिक-से-अधिक लेखों का पता लगाने के लिए धर्मवीर पं० लेखराम-सा धीरज व धुन चाहिए। रक्तसाक्षी पं० लेखराम व पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज के तपोनिष्ठ जीवन से प्रेरणा पाकर मैं इस कार्य में लगा रहा।

ईश्वर की कृपा से पं० लेखराम बलिदान शताब्दी वर्ष आते-आते इस कार्य में पर्याप्त सफलता मिली। रायचूर (कर्नाटक) के स्वर्गीय पं० रामस्वरूपजी के सुपुत्र पं० श्री विद्यासागरजी ने अपने पिताजी के संग्रहालय से पत्रों की कई फाईलें देकर, मेरी बहुत-सी चिन्ता दूर कर दी। एक-एक दो-दो लेख आर्यसमाज नाभा व स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी के ही शिष्य वानप्रस्थी ओ३म् प्रकाशजी बठिण्डा से भी प्राप्त हुए। एतदर्थ उनका धन्यवाद और कहाँ-कहाँ से लेख खोजकर लाया, यह एक लम्बी कहानी है।

अब 'इतिहास-दर्पण' प्रकाशित होने पर मुझे प्रसन्नता तो बहुत हो रही है, परन्तु एक दुःख भी साथ-साथ हो रहा है। दुःख इस बात का है कि आज आचार्य प्रियव्रतजी वेदवाचस्पति नहीं हैं। पं० श्री शान्तिप्रकाशजी शास्त्रार्थमहारथी भी हमारे मध्य नहीं रहे। इन दो महापुरुषों से ही इस कार्य को सम्पन्न करने की विशेष प्रेरणा मिलती रही। तथापि मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि पं० लेखरामजी के बलिदान शताब्दी महापर्व पर विनीत धर्मप्रेमियों की सेवा में एक अनुपम उपहार दे रहा हूँ। धर्म-दीवाने बलिदानी वीरों के जीवन पर स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी सरीखे शूरशिरोमणि बाल-ब्रह्मचारी द्वारा लिखे लेखों से बढ़कर पं० लेखराम की स्मृति में कौन-सा स्मारक हो सकता है?

पं० लेखरामजी का स्मारक ईंट-पत्थर का कोई भवन, स्कूल या कॉलेज तो हो नहीं सकता। वीरों का, दिलजलों का, हुतात्माओं का सीना ही तो

वीर लेखराम का स्मारक है। वीरों के पावन चरित्र ही तो जन-जन की ठण्डी रगों में गर्म रक्त का सञ्चार कर सकते हैं। जाति के जवानों के सुप्त हृदयों को जगानेवाला इतिहास-दर्पण मेरे प्यारे लेखराम का भव्य स्मारक है। यह स्मारक सच्चे आर्यों के घर-घर में स्थापित होगा।

इस 'इतिहास-दर्पण' पुस्तक के सृजन के समय मैंने प्रियवर ब्र० श्रीपालजी आर्य व प्रियवर अजयजी आर्य को कहा कि साहित्यिक व शोध कार्यों के प्रशिक्षण के लिए समय दें। ये दोनों आर्य युवक दो बार मेरे पास अबोहर आये। लेखों को क्रमबद्ध करने व प्रैस कापी तैयार करने का जो कार्य इन्हें सौंपा गया, इन्होंने बड़ी तत्परता से किया। इन्हें इस सहयोग के लिए धन्यवाद क्या दूँ? ये दोनों मेरे सामाजिक कार्यों में अब सदा भागीदार होते हैं। ईश्वर इन्हें धर्मधन से मालामाल करे। मेरी यही कामना है।

पूज्य स्वामी सर्वानन्दजी महाराज ने प्रकाशन से पूर्व इतिहास-दर्पण का पारायण करके आशीर्वादों की वर्षा भी की और अजमेर ऋषि-मेला पर इसके कई अंश सुनाते रहे।

श्री स्वामी सम्पूर्णानन्दजी का इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए उत्साह अत्यन्त प्रशंसनीय था।

आपने इसके कुछ पृष्ठों के प्रूफ़ पढ़कर बहुत अच्छा सहयोग किया। श्री हरिप्रसादजी ने बहुत स्नेह से इसके प्रकाशन की देखरेख का सब भार अपने ऊपर लेकर मुझे चिन्तामुक्त कर दिया। उनको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ? श्री विजयकुमारजी झा भी हमारे सब कार्यों को बहुत लग्न से हाथ में लेते हैं। वह धन्यवाद के पात्र हैं। और भी जिन महानुभावों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस कार्य में मुझे सहयोग किया, मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ।

डॉ० चिरञ्जीवजी व पं० आर्यमुनिजी आदि पर पूज्य स्वामीजी के एक से अधिक लेख मिले, हमने सभी लेख देना उचित समझा। अल्पज्ञ जीव की प्रत्येक कृति में दोष की सम्भावना तो बनी ही रहती है। मेरी अल्पज्ञता के कारण 'इतिहास-दर्पण' के सम्पादन में कई त्रुटियाँ भी रही होंगी। गुणियों के सुझाने पर अगले संस्करण में दूर कर दी जाएँगी। मुझे पूर्ण आशा है कि ऋषि-मिशन से प्यार रखनेवाले सब भाई-बहिन इसके प्रसार का यश लूटेंगे।

भीमकाय ब्रह्मचारी
स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी का
एक चरणानुरागी
—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

गुरुकुल गौतमनगर
नई दिल्ली
७-१२-९६

विषय-सूची

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी

पण्डितजी ग्राम रुमाणा, ज़िला बरनाला, पटियाला राज्य में उत्पन्न हुए थे। साधारण रूप में इस रुमाणा को वैरागियों का रुमाणा कहते हैं।

पण्डितजी ने प्रथम पढ़ाई का आरम्भ गङ्गानगर में एक पण्डित से किया। वहाँ से फिर शम्भीर ग्राम में पढ़ने के लिए चले गये[1]। वहाँ आपने सारस्वत पढ़ा था। पुनः स्वामी मङ्गलदासजी तख़तमल-वालों से 'लघुकौमुदी' पढ़कर कुछ वेदान्त के पुस्तक पढ़े। उस समय पण्डितजी का नाम श्री मणिरामजी था। वहाँ से पण्डितजी काशी गये। शेष अध्ययन आपने वहाँ ही किया। काशी में स्वामी जवाहरदासजी[2] के ये तीन शिष्य समझे जाते थे—(१) स्वामी हरिप्रसादजी वैदिक मुनि (२) पण्डित गोविन्दसिंहजी अपर नाम गण्डासिंहजी तथा पण्डित मणिरामजी।

ये तीनों व्यक्ति अन्त में लेखक भी बने। महामहोपाध्यायजी ने रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, प्रायः सर्वदर्शनों और वेद पर भी लिखा। इसी प्रकार स्वामी हरिप्रसादजी ने संस्कृत तथा भाषा में अनेक पुस्तकें लिखीं। सिद्धान्त की दृष्टि से वैदिक मुनिजी अनिश्चित सिद्धान्तवादी थे। एक समय उन्होंने स्वर्गीय पं० विष्णुदासजी लतालावालों को कहा था, किसी एक पक्ष का ही आनुपूर्वी से यदि मण्डन करना है तो लिखने से क्या लाभ? इससे उनका भाव समझा जा सकता है।

पण्डित गोविन्दसिंहजी ने कई पुस्तकों पर भाषा-टीकाएँ लिखीं।

इनमें सबसे प्रथम पण्डित गोविन्दसिंहजी का स्वर्गवास हुआ। लाहौर में श्री वैदिक मुनिजी और पं० आर्यमुनिजी इकट्ठे काम किया करते थे। पश्चात् दोनों में मतभेद हो गया। मतभेद मोक्ष से आवृत्ति, अनावृत्ति विषय पर था। सद्धर्मप्रचारक में लेख निकलने लगे। उस समय महात्मा मुंशीरामजी ने टिप्पणी में लिखा था, ''मुक्ति तो सान्त है, परन्तु यह लेखमाला अनन्त प्रतीत होती है।'' उस समय पण्डितजी ने एक दोहा लिखा था, जो यह है—

---

१. यहाँ पं० काकारामजी से विद्या प्राप्त की।

२. महर्षि दयानन्दजी के जीवन-चरित में भी इनकी चर्चा आती है। महर्षि के प्रति आदरभाव रखते थे। काशी में ही आर्यमुनिजी ने ऋषि-दर्शन किये, व्याख्यान सुने व वैदिक धर्मी बन गये।

नानक, शङ्कर की नकल हरिप्रसाद को काम।
लोकवञ्चना के लिए वैदिक रख लियो नाम॥

नाभा का शास्त्रार्थ

पण्डितजी आर्यसमाज के प्रचारक, उपदेशक और शास्त्रार्थ महारथी थे। आपने अनेक शास्त्रार्थ किये। उनमें से मैं केवल नाभा के शास्त्रार्थ को लिखता हूँ—नाभापति महाराजा हीरासिंहजी शास्त्रार्थ के अध्यक्ष थे।

शास्त्रार्थ विधवा विवाह पर था। उसमें पण्डितजी ने 'तिस रखवारो औसे होवे'* के पाठ से विधवा-विवाह सिद्ध किया। विपक्षी पण्डित ने आपत्ति की। सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द ने गुरु नानकदेवजी पर आक्षेप किया है, अतः इनका यह प्रमाण देना ठीक नहीं है। इसपर महाराजा नाभा ने व्यवस्था देते हुए कहा था, महाराजा पटियाला श्री राजेन्द्रसिंहजी ने मेम से विवाह किया। मैंने उन्हें कहा, "आपने ठीक नहीं किया, मुझे उन्होंने कुछ नहीं कहा," यदि आप कहें तो आपको वह दण्ड देंगे। इसी प्रकार दयानन्द भी बाबा था, नानक भी बाबा था। बाबे ने बाबे को जो चाहा लिख दिया। यदि पण्डित आर्यमुनिजी कुछ कहें तो मैं पूछ लूँगा, अतः प्रमाण ठीक है। इस शास्त्रार्थ में महाराजाजी की व्यवस्था आर्यसमाज के पक्ष में थी[१]। दोनों पक्षों को विदा करते समय महाराजाजी ने पण्डितजी को कहा था—

"सुणया जांदा ए कि बी०ए०, एम०ए० बड़े झगड़ालू हुंदे ने, पर तू किसे नालों घट नहीं।"

अर्थात् यह सुना जाता है कि अंग्रेजी पठित अपना पक्ष सिद्ध करने में बड़े पटु होते हैं, परन्तु आप भी उन्हीं के समान हैं। किसी से कम नहीं।

आर्यसमाज में केवल पण्डितजी ही महामहोपाध्याय हुए हैं[२]।

---

* यह प्रमाण गुरुग्रन्थ साहेब का है।

१. महाराजा हीरासिंहजी शास्त्रार्थ में दिये गये प्रत्येक प्रमाण को देखते व सुनते थे। उससे आगे-पीछे के पाठकों भी सुनते थे ताकि व्यवस्था देने में सुविधा हो।

२. महर्षि के काल के एक आर्य कवि सांवलदासजी को भी यह उपाधि सरकार ने दी। वह विद्वान् इतिहासकार थे, परन्तु शास्त्रों पर कुछ नहीं लिखा।

सरकार ने उनको उपाधि देकर उनकी विद्वत्ता को स्वीकार किया। पण्डितजी हिन्दी व पंजाबी दोनों भाषाओं के कवि भी थे। उन्होंने गुरुमुखी अक्षरों में दो या तीन पुस्तकें लिखी थीं और पंजाबी के छन्द प्रायः सुनाया करते थे। उन्होंने अपने काल में छपे पंजाबी के सब किस्से पढ़े हुए थे।

पण्डितजी और मल्लयुद्ध

पण्डितजी शरीर से दुबले-पतले दुर्बल से व्यक्ति थे। यह सब जानते हैं, परन्तु इसे लोग कम जानते हैं कि वे मल्लयुद्ध के ज्ञाता थे। इसके लिए एक घटना लिखनी उचित प्रतीत होती है।

जिस समय पण्डितजी डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर में प्रोफेसर थे, उस समय एक दिन बाहर भ्रमण के लिए जा रहे थे। एक युवक ने कहा, पण्डितजी आप यह तो मानते होंगे कि मल्लयुद्ध में केवल शारीरिक बल से काम चल जाता है, इसी प्रकार शास्त्रार्थ में बुद्धि-बल ही चाहिए। पण्डितजी ने उत्तर दिया, मल्लयुद्ध में शारीरिक बल से बुद्धिबल की अधिक आवश्यकता है। इसपर एक युवक ने पण्डितजी को चैलेंज करते हुए कहा, "आप मेरे साथ कुश्ती लड़-लें, आपमें बुद्धिबल तो है ही।"

पण्डितजी तैयार हो गये। उस युवक और पण्डितजी को रोकने का यत्न किया गया कि आप कुश्ती न लड़ें, परन्तु सब निष्फल। 'अन्त में बज़्म से रज़्म हो गया' अर्थात् सभा से समर हो गया। उस कुश्ती के दर्शकों के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि तुरन्त ही पण्डितजी उस युवक की छाती पर बैठ गये। उस युवक ने पण्डितजी की टाँगें पकड़कर उठाकर नीचे गिराना चाहा, पण्डितजी ने ऐसा पेच किया कि वह युवक चारों खाने चित्त हो गया और पण्डितजी फिर उसकी छाती पर बैठ गये।

पण्डितजी से मल्ल-युद्ध की बात करें तो आप घण्टों इस विषय में बातें करते थे। वे दावों के नाम, उनके रूप बतलाते हुए कहा करते थे, अमुक मल्ल ने अमुक कुश्ती में यह दाव किया था, अमुक को यह पेच सिद्ध था, अमुक इसमें सिद्धहस्त था। अमुक नीचे से अच्छा लड़ता था, अमुक बैठकर मल्लयुद्ध करता था, इत्यादि। इस विषय के भी आप उतने ही ज्ञाता प्रतीत होते थे जितने वेदान्त-दर्शन के पण्डित थे।

जिस प्रकार पण्डित लेखरामजी का स्वभाव था कि वे चाहे कि

विषय पर व्याख्यान दें इस्लाम के विषय में कुछ अवश्य कहते थे, उसी प्रकार पण्डित आर्यमुनिजी किसी भी विषय पर भाषण दें, वे नवीन वेदान्त पर कुछ-न-कुछ अवश्य कहते थे।

पण्डितजी ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। बातचीत में वे कहा करते थे कि जिस प्रकार पद्मपादाचार्य, सुरेश्वराचार्य, विद्यारण्य स्वामी, वाचस्पति मिश्रादि ने शङ्कराचार्य के मत की पुष्टि की थी, इसी प्रकार आर्यसमाज को आचार्य ऋषि दयानन्दजी के सिद्धान्तों का मण्डन करना चाहिए। प्रायः वे स्वरचित छन्द की यह पंक्ति पढ़ा करते थे—

'सो गुरु हैं हमरे उर में जिनका शुभ नाम दयानन्द दण्डी।'[1]

अर्थ-शुचिता की मूर्त्ति

एक माँ की कहानी पुत्र की ज़बानी

'आज्ञारामजी'[+]

पुरानी बात है। एक सज्जन तहसीलदार थे। आर्यसमाज के सदस्य थे। वह घूस न लेने के लिए ख्याति प्राप्त थे। मैंने उनसे घूस न लेने का कारण पूछा। उन्होंने कहा यदि आप वचन दें कि मेरा नाम न लिखेंगे तब कारण बता दूँगा, अन्यथा नहीं बताऊँगा। मैं कारण जानने का इच्छुक था, अतः मैंने वचन दे दिया। इसलिए उनका नाम पता न लिखकर मैंने आज्ञाराम उनका काल्पनिक नाम लिखा है।* उन्होंने मिडिल परीक्षा पास करके पटवारी-गिरी की परीक्षा दी और उसमें उत्तीर्ण होकर पटवारी बन गये। तीसरे महीने उन्होंने चालीस रुपये घूस में प्राप्त करके अपनी पूज्या माताजी को भेज दिये। उनके पिता

---

१. यह लेख लाहौर में 'आर्य' के १९४२ के एक अंक में प्रकाशित हुआ था। स्वामीजी महाराज का पण्डितजी पर एक लेख, एक और पत्र में भी छपा।

\+ पूज्य स्वामीजी महाराज ने यह लेख अपने महाप्रयाण से कुछ ही समय पूर्व लिखा था, परन्तु यह देर तक न छपा। एक सभा के कार्यालय में छिपा पड़ा रहा। उनके निधन के चार वर्ष बाद छपा।

* सत्य-भाषण में श्री महाराज अपना उदाहरण आप ही थे। कितनी कठोरता से वे अपने वचन का पालन किया करते थे, यह लेख उसी का एक प्रमाण है।

जीवित न थे। दूसरा कोई भ्राता भी न था। वह अकेले थे। जिस समय माता को ४० रुपये मिले, उन्हें लेकर अपने पुत्र को लिखा तुम्हारा वेतन थोड़ा-सा है उसमें से तुम खाते-पीते, वस्त्र भी पहनते हो तब चालीस रुपये कैसे भेज दिये? उन्होंने उत्तर दिया माताजी आपको इससे क्या मेरे पास रुपये थे, मैंने भेज दिये। आप व्यय कर लें।

कभी ऐसी माताएँ थी!

यह पत्र आते ही माताजी ने मनीआर्डर फ़ीस अपने पास से लगाकर चालीस रुपये अपने पुत्र को लौटा दिये और लिख भेजा इस प्रकार के धन की आवश्यकता नहीं। मैंने तुम्हारे पिता के स्वर्गवास पर परिश्रम करके अपना निर्वाह किया और तुमको पाला तथा पढ़ाया है। यदि मुझे यह पता होता कि मेरा पुत्र पढ़कर बेईमान हो जाएगा तो मैं कभी न पढ़ाती। अच्छा परमेश्वर की ऐसी ही इच्छा थी। अब मुझे कभी कुछ न भेजना।

मैंने जिस भाँति अब तक निर्वाह किया है अब भी कर लूँगी। प्रतीत होता है कि मेरे भाग्य में किसी का सुख नहीं लिखा है। तुम आनन्द में रहो, परन्तु मेरे सामने कभी न आना। जहाँ मैंने पति के स्वर्ग सिधारने पर सन्तोष किया है वहाँ तुमको भी पति के पास गया समझकर सन्तोष से दिन व्यतीत करूँगी।

पुत्र का जीवन बदल दिया

यह पत्र मिलने पर आज्ञारामजी को बड़ा कष्ट हुआ और मनीआर्डर प्राप्त करके उस व्यक्ति को जिससे घूस ली थी बुलवाकर चालीस रुपये लौटा दिये और उससे क्षमा माँगी। वह भी हैरान था कि पटवारीजी क्या कर रहे हैं। तब उन्होंने अपनी माताजी का पत्र सुनाया और उसे जाने की आज्ञा दी। उसी समय माताजी को पत्र लिखा और चालीस रुपये लौटा देने की बात लिखकर आगे को कभी भी घूस न लेने का प्रण करके माताजी से क्षमा चाही। माता उस पत्र को पाकर प्रसन्न हुई और अपने पुत्र को आशीर्वाद दिया।

'आज्ञारामजी' कहा करते थे मेरा गुरु मेरी पूज्या माता है जो कुछ वह कहे मुझे शिरोधार्य है। मेरे जीवन की पथ-प्रदर्शक माता है।

धन्य हैं ऐसी माताएँ और ऐसे आज्ञाकारी पुत्र।

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी[+]

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी का जन्मस्थान रुमाणा (पटियाला राज्य) था, जो ज़िला बरनाला[१] में आता था और जैतो स्टेशन के समीप है। इनका जन्म का नाम मणिराम था। उन्होंने आरम्भ में गङ्गानगर के एक पण्डित से संस्कृत पढ़ी थी। फिर पं० काकाराम जी शम्भीर निवासी के विद्यार्थी बने, पुनः साधु मङ्गलदासजी तख़तमलवालों से विद्या प्राप्त की। इसके पश्चात् काशी चले गये। वहाँ इच्छानुसार विद्याऽध्ययन करके आर्यसमाज के उपदेशक बने। उपदेशक होने पर ही इन्होंने अपना नाम बदलकर आर्यमुनि रख लिया था।[२]

यह दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज लाहौर के प्रोफ़ेसर रहे और कई वर्ष तक वहाँ पढ़ाते रहे।

पण्डितजी ने घूम-घूमकर प्रचार भी बहुत किया। वे माने हुए पुराने उपदेशकों में से एक थे।

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी ने अनेक शास्त्रार्थ किये। उनमें से नाभा में हुआ शास्त्रार्थ विशेष उल्लेखनीय है, जो सनातन धर्मियों के साथ विधवा-विवाह पर महाराजा हीरासिंह की अध्यक्षता में हुआ था। दोनों पक्षों के पण्डितों के भोजनादि का प्रबन्ध राज्य की ओर से ही हुआ था। महाराजा के अध्यक्ष होने से नगर-निवासी बहुसंख्या में शास्त्रार्थ सुनने आते थे। शास्त्रार्थ कई दिन होता रहा। महाराजा हीरासिंह प्रत्येक दिये गये प्रमाण को स्वयं देखते और सुनते थे तथा उस प्रमाण के आगे और पीछे के पाठ को भी सुनते थे ताकि उनको व्यवस्था देने में सुविधा हो।

अन्त में महाराजा ने आर्यमुनिजी को विजयी घोषित किया। उस समय महाराजा ने पण्डितजी को सम्बोधित करके कहा था, "मैंने

\+ पं० श्री आर्यमुनिजी के जीवन-परिचय के लिए स्वामीजी महाराज का यह लेख सब गवेषकों की खोज का आधार रहा है। पण्डितजी के जीवन पर यह प्रथम व प्रामाणिक लेख है। कई बार प्रकाशित हो चुका है।

१. यह स्थान भठिण्डा के समीप है।

२. काशी में महर्षि दयानन्दजी के शास्त्रार्थ सुनकर आर्य बने। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रथम उपदेशक थे।

सुना है बी०ए०, एम०ए० बड़े झगड़ालू हूँदे हन पर तू वी किसे नालों घट नहीं।'' जिसका भाव यह है कि वकील अपना पक्ष सिद्ध करने में पटु होते हैं, परन्तु आप भी उन्हीं के समान ही हैं।

पण्डितजी अन्तिम आयु में वेदभाष्यकार के रूप में कार्यरत थे। ऋग्वेद के उन भागों पर, जिनको ऋषि दयानन्द निर्वाण को प्राप्त करते समय छोड़ गये थे, पण्डितजी ने लिखा। आर्यसमाज में अपने समय में केवल वही महामहोपाध्याय थे।[1] उनकी प्रतिष्ठा समाज और प्रशासन दोनों में ही थी।

आप पंजाबी और हिन्दी में कविता लिखा करते थे। मैं उनके दो दोहे लिखकर लेख समाप्त करता हूँ। उत्तरमीमांसा भाष्य में लिखा है—

मुनि बिन किन हूँ न लिखी, भाषा में यह चाल।
शारीरक से काटना, शङ्कर मत का जाल॥

स्वामी हरिप्रसादजी के विषय में मुक्ति से आवृत्ति-अनावृत्ति के सम्बन्ध में लिखा था—

नानक, शङ्कर की नकल, हरिप्रसाद को काम।
लोकवंचना के लिए, वैदिक रख लियो नाम॥

महामहोपाध्यायजी शरीर से दुर्बल थे। वह प्रायः गरम कपड़े पहना करते थे। वह भी कश्मीरी पट्टू के ही, परन्तु उन्हें कुश्ती का बड़ा शौक था। एक बार एक युवक ने उन्हें पूछा कि वह बलहीन शरीर से कुश्ती की बात क्यों करते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि कुश्ती में भी बुद्धि-बल प्रधान होता है।

उस युवक ने कहा, ''आप मेरे साथ कुश्ती कर-लें।'' पण्डितजी ने उसकी बात स्वीकार कर ली। साथियों ने रोका भी, परन्तु दोनों ही न माने। अन्त में बज़्म से रज़्म हो गया (सभा से समर हो गया) अर्थात् बातचीत से अखाड़ा बन गया। उसमें देखा गया कि पाँच मिनट के भीतर ही पण्डितजी ने उस युवक को चित्त कर दिया और छाती पर बैठकर कहा, ''देखो, ऐसा पछाड़ा करते हैं।''

---

१. मेवाड़ के सुप्रसिद्ध इतिहासकार, महाकवि श्यामलदास एक और आर्यसमाजी थे, जिन्हें प्रशासन ने इस उपाधि से सम्मानित किया, परन्तु उन्होंने धर्म, दर्शन पर कार्य नहीं किया। वह भी स्वयं को ऋषि दयानन्द का शिष्य कहने में गौरव अनुभव करते थे।

लाला साईंदासजी[1]

लालाजी आर्यसमाज लाहौर के प्रथम प्रधान थे। जिस समय डॉक्टर रहीमखाँ के गृह पर आर्यसमाज की स्थापना हुई, उस समय लालाजी प्रधान बनाये गये।[2] महर्षि दयानन्द तब इसी कोठी में ठहरे थे। अपने जीवन के अन्तिम समय तक लालाजी लाहौर समाज के प्रधान रहे। उस समय के वृद्धों तथा युवकों पर उनका प्रभाव था। पं० गुरुदत्तजी[3], महात्मा हंसराजजी आदि को आर्यसमाज में लानेवाले आप ही थे। आपके सम्बन्ध में मैं एक बात लिखना चाहता हूँ। वह शतांश देने की है।

आर्यसमाज के उपनियमानुसार प्रत्येक सदस्य को अपनी आय का शतांश प्रतिमास चन्दे के रूप में देना होता है। वे न्यायालय में रीडर थे। एक बार आप जब अपना वेतन लेकर आर्यसमाज में आये तो आपको वहाँ चपरासी न मिला और न ही कोई अन्य अधिकारी वहाँ था। आप तीन घण्टे तक मन्दिर में प्रतीक्षा करते रहे और तीन घण्टे के पीछे जब चपरासी आया तो आपने उसे अपना शतांश दे दिया और उसे आज्ञा दी कि प्रत्येक मास के आरम्भ की तिथियों में आप आर्यसमाज मन्दिर में ही रहा करें, बाहर न जावें। उसने कहा, ''प्रधानजी, आर्यसमाज के काम पर ही जाना होता है।'' आगे को इन दिनों वह काम छोड़ दें, क्योंकि मुझे आज तीन घण्टे आपकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। मेरा नियम है जिस दिन मुझे वेतन मिलता है मैं वेतन लेकर सीधा आर्यसमाज में आता हूँ और शतांश देकर अपने घर जाता हूँ, क्योंकि मेरा नियम है जिस समय तक मैं शतांश न दूँ अपने वेतन का धन घर नहीं ले-जाता।

आर्यसमाज के सदस्यों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

---

१. यह लेख १९५९ में प्रकाशित हुआ था, स्वामीजी के अन्तिम लेखों में से एक है।

२. उस समय प्रधान रायबहादुर मूलराज बनाये गये। लालाजी भी समाज के अधिकारी थे। प्रधान तो बाद में बने।

३. पं० गुरुदत्तजी तो मुलतान में ही आर्यसमाज के सभासद बन गये थे। लाला साईंदासजी का भी पण्डित गुरुदत्त से विशेष स्नेह था।

भक्त प्रवर लाला लब्भूरामजी नय्यड़[१]

लालाजी अभी जीवित हैं। आप न तो धनी हैं और न ही विद्वान् हैं, परन्तु आर्यसमाज की जितनी सेवा उन्होंने की है शायद ही कोई कर सके। आपकी प्रथम आयु में आपके पूज्य पिताजी काम करते थे और आप आर्यसमाज के लिए काम करते रहे। उनके स्वर्गारोहण पर आपके सुपुत्र घर के काम में लगे। आप आर्यसमाज का काम करते रहे। अब आपके पुत्र भी रिटायर होनेवाले हैं। आप आयु की दृष्टि से वृद्ध हैं तो भी आर्यसमाज का काम करते हैं।

प्रश्न होगा आप क्या काम करते हैं? आपका मुख्य काम है आर्यसमाज लुधियाना, आर्यसमाज लुधियाना की संस्थाएँ और आर्यसमाज की प्रान्तीय संस्थाओं के लिए धन संग्रह करना। आर्यसमाज की कोई संस्था ऐसी नहीं जिसमें इनका भाग नहीं। आर्यसमाज का कोई काम नहीं जिसके यह भागीदार नहीं। आर्यसमाज लुधियाना के मन्दिर, स्कूल, पाठशाला में इनके द्वारा संग्रह किया हुआ धन लगा है। गुरुकुल कांगड़ी में लगभग एक लाख रुपया उन्होंने जमा करके दिया है और कई कमरे बनवाये हैं। वे जो चीज़ बनवाते हैं उसपर प्रायः लिखा रहता है। ''लब्भूरामजी नय्यड़ मित्र-मण्डली द्वारा निर्मित।''

आपकी मित्र-मण्डली बहुत है। आप लुधियाना में बैठकर पत्र-व्यवहार द्वारा धन-संग्रह करते हैं। यदि कोई धनी धन दे तो उत्तम है, परन्तु स्वयं धनी न होकर अपने पुरुषार्थ से अपने दानी मित्रों से थोड़ा धन-संग्रह करके लाखों की राशि पुण्य कार्यों में लगाना उत्तमतर है[२]। इतना करने पर भी उनको अपने कृत्य पर कोई अभिमान नहीं है। वे नम्र हैं। यदि कोई कहे आपने बड़ा काम किया है तो आप नम्रभाव से उत्तर देंगे यह धन्यवाद व प्रशंसा दानी सज्जनों को दें। मैं इसका पात्र नहीं हूँ, मैं तो आर्यसमाज का सेवक हूँ।

---

१. यह लेख भक्त प्रवर लब्भूरामजी के जीवन काल में ही लिखा गया था, परन्तु उनके निधन के पश्चात् १९५९ में प्रकाशित हुआ। लेखक का भी तब तक महाप्रयाण हो चुका था। भक्तजी महर्षि दयानन्द जी महाराज के दर्शन करके बाल्यकाल में ही वैदिक धर्मी बने थे।

२. वैदिक धर्म के प्रचार के लिए थोड़ा-थोड़ा करके भी आपने लाखों रुपये एकत्र करके आर्यसमाज को दिये। उनके द्वारा संग्रहीत धन का आज लेखा-जोखा करें तो कह सकते हैं कि उन्होंने परोपकारी कार्यों के लिए करोड़ों रुपये संग्रहीत किये। वे अर्थशुचिता की मूर्ति थे।

हुतात्मा महात्मा राजपालजी

श्री राजपालजी का जन्म-स्थान अमृतसर है। आपका बाल्य-काल वहाँ ही व्यतीत हुआ। आप पढ़ाई समाप्त करके जब कार्य-क्षेत्र में आये तो महाशय कृष्णजी का जो "प्रकाश" नाम का समाचार-पत्र है, उसके मैनेजर बने। कार्यकाल में दोनों का सम्बन्ध इस प्रकार का हो गया कि आप व्यवहार में भ्राता-से बन गये।

"प्रकाश" का कार्य करते-करते आपके चित्त में विचार आया कि आर्यसमाज के साहित्य-प्रचार के लिए तथा आय-वृद्धि के लिए पुस्तकालय खोलना चाहिए। तब आपने सरस्वती पुस्तकालय खोला। इसके पश्चात् मास्टर लक्ष्मणजी रामनगरी ने अपना आर्य नाम का पुस्तकालय गुरुकुल[1] को दे दिया। तब महात्मा मुंशीराम ने वह पुस्तकालय श्री राजपालजी को सौंप दिया। तब से उसका नाम 'आर्य पुस्तकालय' भी सम्मिलित हो गया।

आपने अनेक पुस्तकें छपवाई। उन पुस्तकों में एक लघु-पुस्तिका छपवाई जिसका नाम "रंगीला रसूल" था। उस पुस्तक पर लेखक का नाम न था और उस पुस्तक के लेखक को भी आर्यसमाज में बहुत कम व्यक्ति जानते हैं।

सरकार के रिपोर्ट विभाग ने उस पुस्तक को आपत्तिजनक नहीं समझा, अतः उसपर कोई रिपोर्ट न की गई[2], परन्तु महात्मा गाँधीजी को वह लघु-पुस्तिका रुचिकर न हुई। उन्होंने अपने 'नव-जीवन' पत्र में उसके विरुद्ध लिखा। उनके लेख के पश्चात् सरकार ने उसे ज़ब्त कर लिया और मुसलमानों में आन्दोलन खड़ा हो गया और श्री राजपालजी पर अभियोग चलाया गया।

अभियोग के समय भी मुसलमान आन्दोलन करते रहे और प्रथम न्यायालय में आपको छह मास की कैद हो गई और हाईकोर्ट में अपील की गई। अपील में आप बरी हो गये।

न्यायालय में भी उनसे लेखक का नाम पूछा गया—आपने उत्तर दिया "जब पुस्तक प्रकाशन के समय मैंने उसपर नाम नहीं छापा

---

१. गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।

२. रंगीला रसूल की चर्चा करनेवाले इतिहासकारों को इस तथ्य को छुपाना नहीं चाहिए।

तो मेरा कर्तव्य है मैं अब भी नाम न बताऊँ और आपने नाम नहीं बताया।''

अभियोग से छूटने और नाम न बताने पर मुसलमानों के कोप का भाजन आप ही बने। आपपर प्रथम खुदाबख्श ने आक्रमण किया। दैवयोग से उस समय श्री स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ और लेखक वहाँ थे। उस आक्रमण से आप बच गये।[१]

उसके लगभग एक वर्ष पश्चात् आपपर दूसरा आक्रमण इल्मदीन ने किया, जिसमें आप शहीद हो गये।

इस घटना से मैं केवल यह दिखाना चाहता हूँ कि श्री राजपालजी ने अपनी जान देना अच्छा समझा, परन्तु उस पुस्तक के लेखक का नाम कहीं न बताया, जैसे पंजाबी कवि ने कहा है—

वारसशाह ने भेद सन्दूक खुल्ले,
भावें जान दा जन्दरा टुट जाए।

इस हत्या में महात्मा गाँधी भी कारण हैं, वह चाहे अनजानेपन से हों, चाहे जानकर हों।

यह बात एक बार महामना मालवीयजी को बताई गई। आपने उस समय कहा था, ''ऐसे व्यक्तियों पर आर्यसमाज जितना अभिमान करे थोड़ा है, जो व्यक्ति भेद न बताकर जान देता है, वह महात्मा है।''

जो सज्जन बिना प्रयोजन, बिना पूछे, एक की बात दूसरे को बताते फिरते हैं, उन्हें इस महात्मा के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।[२]

---

१. इस लेख के लेखक एक वीतराग संन्यासी महात्मा का बड़प्पन वन्दनीय है, जो अत्यन्त विनम्रता से यहाँ यह लिखने से सकुचाते हैं कि आपने ही इस हत्यारे को तत्काल धर दबोचा था। वह भागकर जान न बचा सका।

२. यह लेख सन् १९४१ में छपा था।

एक सच्चा आर्यवीर

एक स्टेशनमास्टर [१]

आचार की दृष्टि से, अपने स्वभाव में कट्टरपन की दृष्टि से, अपने नियमों पर अटल रहने की दृष्टि से, ला० गङ्गारामजी विशेष व्यक्ति थे, इसलिए उनके जीवन की कुछ घटनाएँ लिखता हूँ, सम्भव है कोई सज्जन इनसे लाभ प्राप्त करे।

(१) लाला गङ्गारामजी सहायक स्टेशनमास्टर थे, स्टेशनमास्टर अंग्रेज था, लालाजी जिला गुजरांवाला के कानेवाली ग्राम के निवासी थे। उस समय की यह घटना है। उनकी माता का स्वर्गवास हो गया, वे स्टेशनमास्टर से पूछकर अपने ग्राम चले गये, दैवयोग से उसी दिन एक रेलवे अफ़सर आ गया। उसने और बातों के साथ-साथ यह भी पूछा, लाला गङ्गारामजी कहाँ हैं। स्टेशनमास्टर ने उस दिन उनकी हाजरी लगा दी थी, इसलिए कहा—यहाँ ही हैं। कहीं इधर-उधर होंगे। बात समाप्त हो गई। ये दूसरे दिन अपने ग्राम से आ गये। तब उस अफ़सर ने इनसे पूछ लिया, कल आप नहीं मिले, कहाँ गये थे? इन्होंने उत्तर दिया, मेरी माता का स्वर्गवास हो गया था, इसलिए मैं ग्राम गया हुआ था, यहाँ न था। उसने कहा, स्टेशनमास्टरजी तो कहते थे आप यहाँ ही हैं। इन्होंने उत्तर दिया, उन्होंने मेरे बचाव के लिए ऐसा कह दिया था, वास्तव में मैं अपने ग्राम गया हुआ था।

वह इनका सत्य वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ।

(२) एक बार लाला गङ्गारामजी से लाइन क्लियर देने की विशेष भूल हो गई। जब उसका पता लगा, तो लालाजी से वक्तव्य माँगा गया। स्टेशनमास्टर ने इनको उत्तर लिखने को कहा। इन्होंने चार दिन पीछे लिखकर दिया मुझसे भूल हो गई, इस भूल के कारण दुर्घटना हो सकती थी, यदि नहीं हुई तो रेल-यात्रियों के सौभाग्य के कारण नहीं हुई, अतः इस भूल का मुझे जो दण्ड दिया जाए, मैं प्रसन्नता से स्वीकार करूँगा।

जब स्टेशनमास्टर ने उसे पढ़ा, तो इनसे कहा कि क्या नौकरी छोड़ने की अभिलाषा है। इन्होंने उत्तर दिया नहीं, तब उसने समझाया

---

१. यह लेख १९५४ में प्रकाशित हुआ।

और कहा—कुछ और लिखकर लाओ।

वे काग़ज़ ले-गये, तीन दिन पश्चात् पुनः वही लाकर दे दिया। स्टेशनमास्टर ने कहा, यह उत्तर तो पूर्ववाला ही है। लाला जी ने कहा, सत्य यही है, अतः यही उत्तर ठीक है। झूठ कैसे लिखूँ?

स्टेशनमास्टर ने वह उत्तर ऊपर भेज दिया। ऊपर से आज्ञा मिली गङ्गाराम को सावधान कर दो आगे से ऐसी भूल न करे। स्टेशनमास्टर तथा अन्य रेल-कर्मचारी आश्चर्यान्वित थे कि यह क्या हुआ। अपराध स्वीकार करने पर केवल सावधान ही किया गया। उस अधिकारी से किसी ने पूछा कि आप छोटे-छोटे अपराधों पर अधिक दण्ड दे देते हैं, परन्तु लाला गङ्गाराम ने अपराध किया और इन्होंने स्वीकार भी कर लिया तब भी आपने वार्निंगमात्र देकर छोड़ दिया।

उसने उत्तर दिया—**मुझे ऐसा व्यक्ति कभी मिला ही नहीं, उसने अपराध स्वीकार किया, उसका कारण अपनी भूल बताई और उसका दण्ड लेने के लिए तैयार हो गया। लोग अपराध करते, पुनः उसे न मानकर झूठ बोलते हैं। गङ्गाराम ने सत्य कहा, अतः उसे कोई विशेष दण्ड न दिया गया, भूल सबसे हो सकती है, उससे भी हुई।**

सद्व्यवहार

(३) लाला गङ्गारामजी की बदली किला अबदुल्लापुर (बिलोचिस्तान) में हो गई। वहाँ से फलों के टोकरे बाहर भेजे जाते थे। दस्तूरी का चलन वहाँ भी था, फलोंवाले जब दस्तूरी देना चाहें तो ये न लें। प्रथम तो उनको सन्देह हुआ कि यह अधिक लेना चाहते हैं, परन्तु जब इन्होंने कहा, मुझे रेलवे से वेतन मिलता है, उसी से मुझे यह काम करना होता है। आप जिसे दस्तूरी कहते हैं, वह रिश्वत है, तब वे चुप हो गये।

एक समय स्वर्गीय पण्डित विश्वम्भरनाथ आदि वहाँ गये, इनके पास ठहरे, एक दिन वे एक ग्राम में फल खाने चले गये। बागवान से फल लेकर खाते रहे, उस बिलोच ने इनसे पूछा, आप यहाँ कैसे आये हैं? इन्होंने उत्तर दिया—लाला गङ्गारामजी स्टेशनमास्टर के पास आये हुए हैं। जब फलों से पेट भरकर यह उसे फलों का दाम देने लगे तो उसने दाम लेने से इन्कार कर दिया और बलपूर्वक कहा, जब स्टेशनमास्टर दस्तूरी तक भी नहीं लेता है तो मैं उसके मित्रों से फलों का दाम लूँ, यह उचित बात नहीं है। आप प्रतिदिन इस

बाग से जो फल चाहें आकर खाया करें, आपसे कुछ दाम न लिया जाएगा, आप जैसे गङ्गाराम के मित्र हैं, वैसे ही हमारे भी मित्र हैं।

(४) उसी स्टेशन पर एक बार एक अंग्रेज रेलवे अफ़सर आया हुआ था और वह प्रतीक्षागृह में ठहरा हुआ था। दैवयोग से उस समय एक पुरुष, एक स्त्री अर्थात् पति-पत्नी जो बिलोच थे आये और सैकेण्ड क्लास का टिकट लेकर जब प्रतीक्षागृह में गये तो अंग्रेज ने उन्हें वहाँ घुसने न दिया, गङ्गाराम ने उस अंग्रेज से कहा, यह प्रतीक्षागृह है और प्रथम व दूसरे दर्जे के यात्रियों के लिए है आप इसे खाली कर दें, उसने न माना, इन्होंने पुलिस द्वारा उसका सामान बाहर रखवाकर उस दम्पती को ठहराया।

उसके पश्चात् एक बार इनको सूचना मिली कि इधर डाकू आये हुए हैं, आप सावधान रहें, उस दिन किला अबदुल्लापुर में कुछ न हुआ, एक और स्टेशन को डाकुओं ने लूटा।

तदनन्तर गाजियों का एक नेता पकड़ा गया। जब उसे रेल में ले-जा रहे थे, उसने इच्छा प्रगट की कि मैं किला अबदुल्लापुर के स्टेशन मास्टर को मिलना चाहता हूँ। पुलिसवालों ने स्टेशन आने पर लालाजी को कहा, वे आ गये, वह पठान बड़ी श्रद्धा से मिला और कहा लालाजी आप निश्चिन्तभाव से रहें, जहाँ आप होंगे, वहाँ कोई गाजी या डाकू जो पठान है, आपको कुछ न कहेगा। उस दिन हम आपके पास अमुक स्थान पर बैठे रहे। पुलिसवालों ने कहा, खानसाहिब, लालाजी में क्या बात है। उसने कहा यह देवता है, इन्होंने सैकण्ड क्लास टिकटवाले पठान को स्थान दिलाया, यह गरीबों के सहायक हैं, इसलिए हमने निश्चय कर लिया है, जहाँ ये होंगे इनकी रक्षा की जाएगी, सब पठान इनके दोस्त हैं।

मित्रता

(५) जब लालाजी वजीराबाद में थे उस समय गुजरांवाला में धर्मपाल आर्य बने। उस समय कॉलेज में पढ़नेवाले कई विद्यार्थियों ने उस शुद्धि में भाग लिया था। उनमें से एक के पिता ने रुष्ट होकर उससे कहा आप हरिद्वार जाकर प्रायश्चित्त करें, अन्यथा हम पढ़ाई का व्यय नहीं देंगे और आप गृह पर न आवें। इस बात की सूचना इनको दी गई, इन्होंने उस विद्यार्थी से कहा आप पढ़ते रहें, आपका सारा व्यय मैं दूँगा।

जब इस प्रकार कई मास व्यतीत हो गये, तब उसके पिता ने

पता किया कि लड़का निर्वाह कैसे करता है? जब उनको पता लगा तो वह गङ्गारामजी के पास आया और कहा आप लड़के को कहें वह गृह पर आजावे। आर्यसमाजी अच्छे होते हैं, हमारा लड़का आर्यसमाजी हो गया तो ठीक ही है। तब उनके पिता और उस विद्यार्थी का पूर्ववत् मिलाप हो गया और वह अपनी इच्छानुसार पढ़ता रहा।

दृढ़ता

(६) (क) जब वे पठानकोट स्टेशन पर थे, उस समय आर्यसमाज-मन्दिर बनवाया और उस स्थान पर जो थानेदार थे, वे बिना टिकट रेल पर आये, लालाजी ने उनसे टिकट के पैसे प्राप्त किये जब कि वे जानते थे कि यह थानेदार है।

(ख) एक बार एक रेलवे-अफ़सर अंग्रेज आया, उसके पास एक कुत्ता था, गङ्गारामजी ने पूछा कुत्ते का पास वा टिकट दो। उसने कहा मैं रेलवे में ही काम करता हूँ। लालाजी ने कहा—मैं जानता हूँ आपके पास, पास है, किन्तु मैं कुत्ते का किराया माँगता हूँ, आपका नहीं। अन्त में उसे कुत्ते का किराया देना ही पड़ा।

पहले थानेदार ने शिकायत कर दी कि यह आर्यसमाजी है, लाला लाजपतरायजी का साथी है। इन सब कारणों से वह बिलोचिस्तान बदल दिये गये।

(ग) किला अबदुल्लापुर में एक बार सीनियर सुपरिण्टैण्डैण्ट की धर्मपत्नी अपनी सहेलियोंसहित आ गई। इन्होंने टिकट माँगा, उसने कहा जाते समय दे जाऊँगी, वह सायंकाल बिना टिकट दिये चली गई। इन्होंने रिपोर्ट कर दी। उस समय श्री ज्ञानचन्द मेहता, श्री गणेशदासजी विज वहाँ पुलिस में थे। इन्होंने गङ्गाराम से कहा, आपको बदलकर यहाँ भेजा, यहाँ भी आप वैसे ही काम करते हैं। इन्होंने उत्तर दिया—आप लिखकर दिला दें, इनसे टिकट न लिया जाए, मैं न मागूँगा, यह धन मेरी जेब में तो जाता नहीं, रेलवेकोष में जाता है।

(घ) इनके एक परिचित अंग्रेज ने (जो किसी काम पर आगे जा रहा था) इनको समाचार-पत्र चिह्नित करके दिया, जहाँ आर्यसमाज के विरुद्ध लेख था, इन्होंने उसे पढ़ा और जब वह लौटकर आया तो अंग्रेज को आर्य-पत्रिका के कुछ अंक चिह्न लगाकर दिये जो आर्यसमाज की सत्यता प्रगट करते थे। इनको पढ़कर वह लालाजी का भक्त बन गया। इनके असली रूप को समझ गया।

(ङ) एक स्पैशल ट्रेन में रेलवे-अफ़सर उधर गये। जब किला अबदुल्लापुर ट्रेन ठहरी तो एजेण्ट साहिब ने पूछा, गङ्गाराम क्या हाल है? इन्होंने उत्तर दिया ठीक है। उसने कहा कहाँ जाना चाहते हो। इन्होंने कहा कंधार में लाइन बना दो, वहाँ जाऊँगा। उसने कहा हम तुम्हें पंजाब भेजना चाहता है। ये बोले आर्यसमाजी होने से मुझे पंजाब से यहाँ भेजा था, अब तो मैं पहले से भी अधिक आर्यसमाजी हूँ। पर आप सोच लें, उसने कहा—Yes, we want an Aryasamajist for that place. हाँ, हम उस स्थान के लिए आर्यसमाजी ही चाहते हैं। तब वह अमृतसर स्टेशन पर बदल दिये गये।

इनके काम से प्रसन्न होकर अमृतसर का माल उतारने और चढ़ाने का ठेका भी इनको ही दिया गया था।

(७) एक बार लाहौर के आर्यसमाजी जिनमें इनके सुपुत्र लाला फ़कीरचन्दजी, स्वर्गीय पं० भूमानन्दजी, पं० परमानन्दजी आदि अनेक सज्जन थे, जो गुरुकुल कांगड़ी जा रहे थे। अमृतसर स्टेशन पर एक अंग्रेज रेल अफ़सर उस डिब्बे में और आदमी बिठाने लगा, वहाँ प्रथम ही भीड़ थी। भूमानन्दजी ने विरोध किया, उसने भूमानन्द को उतार लिया। लालाजी को सूचना दी गई, ये आ गये। वह गाड़ी तो चली गई, इन्होंने भूमानन्दजी की जमानत करवाकर फ्रंटियर मेल से उसे भेज दिया, वह सहारनपुर अपने साथियों को जा मिला।

दोनों पक्षों ने अभियोग किया, जिस समय उस अफ़सर को पता लगा कि इस अभियोग में लाला गङ्गारामजी साक्षी होंगे, वह इनके पास आया और कहा मेरी उनसे सन्धि करवा दे, क्योंकि अमृतसर में सब आपको सत्यवक्ता जानते हैं, आपकी साक्षी से वह दोषी सिद्ध न होकर मैं ही दोषी बनूँगा।

इन्होंने सन्धि करवा दी।

देशवासियों को स्वर्गीय लाला गङ्गारामजी के जीवन की घटनाएँ पढ़कर उनपर विचार करना चाहिए। जैसे वे थे वैसे ही दृढ़ आर्य और सत्यवक्ता तथा कर्त्तव्य-पालक बनने का यत्न करना चाहिए।

मेहता अमींचन्दजी

मेहताजी झेलम के निवासी थे। आप प्रथम मद्यप, मांस-भक्षी, वेश्यागामी थे। आप गाने की अनेक सभाओं में सम्मिलित होते थे। उसमें रङ्गरलियाँ भी मनाते थे। सौभाग्यवश महर्षि दयानन्दजी जब झेलम गये तो मेहताजी ने उनके दर्शन किये और उनके भाषण भी सुने। उसके पश्चात् उनके जीवन ने पलटा खाया, जीवन की अपवित्रता मिट गई और शुद्ध आर्यजीवन हो गया। तब आर्यसमाज के भजन हिन्दी और पंजाबी में बनाया व गाया करते थे। आप आर्यसमाज के उत्सवों में सम्मिलित होते थे।

एक बार आप आर्यसमाज बन्नू के उत्सव पर गये। जिस समय वहाँ की वेश्याओं और गायकों को पता लगा कि मेहताजी आये हैं तो उन्होंने एक मजलिस (सभा) करने का विचार करके उसका पूरा-पूरा आयोजन कर डाला। सब साधन जुट जाने पर मेहताजी की सेवा में एक ने आकर निमन्त्रण दिया।

आपने उसे टाल दिया। तब कई व्यक्ति पंचायत (डैपुटेशन) रूप में आये। मेहताजी ने कहा, यह पहला मेहता नहीं है, जो मजलिसों (राग-रङ्ग की सभाओं) में भाग लिया करता था। ऋषि-दर्शन से जीवन ने पलटा खाया है। अब जिसे गाना सुनना है आर्यसमाज में आ जाए और सुन ले और जिसे दर्शन करना है, आर्यसमाज-मन्दिर में आकर कर ले।

विशेष टिप्पणी—रक्तसाक्षी पं० लेखरामजी ने ला० गङ्गाराम की साक्षी से लिखा है कि मेहता अमीचन्दजी ने झेलम में ऋषिजी के दर्शन किये थे। आर्यसमाज के एक इतिहासज्ञ पं० विष्णुदत्तजी वकील व आचार्य चमूपतिजी ने लिखा है कि एक डॉक्टर महाशय उन्हें गुजरात में ऋषि दरबार में ले-गये थे। हमें दोनों घटनाएँ एक-दूसरे की पूरक लगती हैं। महर्षि दयानन्द गुजरात से पूर्व झेलम पधारे थे। अमींचन्द तब वहीं थे। ऋषि के कृपाकटाक्ष से अमींचन्द का जीवन ऐसा पलटा कि श्री पण्डित चमूपतिजी के शब्दों में—''**जो अनुराग उसे विषयभोग में था, वह अब ईश्वर-भक्ति में हो गया।**''

'जिज्ञासु'

श्री शादीरामजी पानीपती

आर्यसमाज पानीपत में श्री शादीरामजी एक उत्तम कार्यकर्त्ता व कर्मठ व्यक्ति थे। वह नगर में अर्जी-निवीस [Petition writer] का कार्य करते थे। उनकी लेखनशैली की वहाँ धाक थी। लिखवानेवाले उनकी प्रतीक्षा में घण्टों व्यतीत करते थे। आप आर्यपत्रों में आर्य सिद्धान्तों पर भी लेख लिखा करते थे। उस समय के पत्र उठाकर देखें तो उनके अनेक लेख आपको मिलेंगे। आप आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर शास्त्रार्थ भी किया करते थे। कभी-कभी गल्प भी लिखा करते थे।

आर्यसमाज के प्रचार में उनकी विशेष रुचि थी। मैं उनके जीवन-काल में कई बार वहाँ गया। वे जब मिलते थे तो किसी-न-किसी सिद्धान्त पर अवश्य कुछ-न-कुछ पूछा व कहा करते थे।

आपका प्रेम आर्यसमाज से अगाध व अटूट था। इसका पता निम्न घटना से मिलता है।

आप उस समय आर्यसमाज के अधिकारी थे और श्रद्धा-प्रेम से कार्य किया करते थे। उस समय उन्होंने किसी विशेष अवस्थावश अपनी सन्तान में से किसी का विवाह उस आयु से न्यून आयु में किया जो आर्यसमाज मानता है। इसपर उनका केस आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा में विचारार्थ उपस्थित किया गया। विचारानन्तर अन्तरङ्ग सभा ने निश्चय किया कि इनको आर्यसमाज के अधिकारी-पद से पृथक् कर दिया जाए, आगे के लिए ये आर्यसमाज के साधारण सदस्य रह सकते हैं।

यह निर्णय उनको भी सुनाया गया। उन्होंने इसे शिरोधार्य किया और जब अगला रविवार आया तो आपने समाज में जाकर झाड़ू लगाया और हवन-कुण्ड आदि साफ़ किया। सामग्री-घृत वहाँ रखा। उस समय किसी व्यक्ति ने आकर उनसे कहा, ''मैंने सुना है आपको आर्यसमाज ने पृथक् कर दिया है?'' आपने कहा, ''हाँ कर दिया है।''

विशेष टिप्पणी—प्रसिद्ध आर्यसमाजी व कांग्रेसीनेता श्री देशबन्धु गुप्त आपके सुपुत्र थे। आपने विधर्मियों के उत्तर में कई खोजपूर्ण पुस्तकें लिखीं। आप आर्यसमाज से पृथक् किये जाने से पूर्व भी समाज-मन्दिर में झाड़ू लगाया करते थे। वह ऐसा करके स्वयं को धन्य-धन्य मानते थे। 'जिज्ञासु'

तब उसने कहा, "फिर आप आर्यसमाज में यह कार्य क्यों कर रहे हैं?"

आपने उत्तर दिया, "आर्यसमाज से पृथक् अवश्य किया है, परन्तु मुझे सेवा करने से नहीं रोका है। इसलिए मैं सेवा कर रहा हूँ।'

इससे पता लगता है, आपका आर्यसमाज से अगाध प्रेम था।

अज्येष्ठा, अविष्ठा का प्रचारक

बाबू दुर्गाप्रसादजी फ़र्रुखाबाद

फ़र्रुखाबाद नगर-निवासी बाबू श्री दुर्गाप्रसादजी महाराज एक सम्पन्न सज्जन थे। आपका यज्ञोपवीत संस्कार महर्षि दयानन्दजी ने करवाया था। आपके जीवन की दो घटनाएँ यहाँ लिखी जाती हैं।

आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद के सत्संग में महकू नाम का एक कहार भी आया करता था। वह एक-दो सप्ताह नहीं आया तब बाबू दुर्गाप्रसाद ने पूछा, "महकू कहाँ है? उसे देखा नहीं।" तब किसी ने बताया, "महाराजजी! वह तो रोगी है। आप यह सुनकर आर्यसमाज के सत्संग से उठकर उसके घर को चल दिये। जब गली में जाकर उसका घर पूछा तो लोग आश्चर्य में थे कि यह महकू के घर क्यों जाते हैं। वहाँ पहुँचकर उसका समाचार पूछा। वह रोगी था। उसकी ओषधि का प्रबन्ध किया और प्रतिदिवस उसका समाचार लेने जाने लगे।

एक दिन वह अधिक रोगी हो गया। बचने की आशा न्यून हो गई। आपने उस समय पूछा—"महकू क्या इच्छा है?"

उसका एक छोटा बालक था, उसने कहा, "महाराज! यह बालक है, यदि कृपा करके इसकी रक्षा का वचन दें तो मैं शान्ति से शरीर छोड़ दूँगा।" आपने 'हाँ' में उत्तर दिया और महकूजी के प्राण-पखेरू उड़ गये।

उस बालक को बाबू श्री दुर्गाप्रसादजी ने उच्च शिक्षा दिलाई और वह किसी नौकरी में लग गया। इनका समता का व्यवहार आर्यों के लिए अनुकरणीय है।

बाबू श्री दुर्गाप्रसाद का पुत्र बालकों के साथ एक उद्यान में खेल रहा था। खेलते समय बालकों की इच्छा हुई कि एक वृक्ष से फल तोड़ें। निश्चय होने पर नन्दकिशोर बालक वृक्ष पर चढ़ा और फल तोड़कर नीचे डालता रहा। जब वह नीचे उतरा तो उसने देखा

बाबू श्री दुर्गाप्रसाद के पुत्र ने अच्छे-अच्छे, पके फल खा लिये हैं और कच्चे रख दिये हैं। यह देखकर उसे आवेश आ गया। उसने कहा, ''आप करोड़पति के लड़के हैं तो अपने घर, मैं आपका नौकर नहीं। आपने मेरे फल क्यों खाये हैं इत्यादि।''

नौकर उनके पुत्र को घर ले-गया और यही बात उनको बताई। उन्होंने नन्दकिशोरसहित सब लड़कों को बुलाया। वे सब डरे, परन्तु विवश थे। बाबू श्री दुर्गाप्रसादजी के सामने गये। उन्होंने नन्दकिशोर से कहा—आपने गाली क्यों दी। उसने डरते हुए कहा—''मैं वृक्ष पर चढ़ा और फल तोड़कर गिराये। इसने पके-पके, अच्छे फल खा लिये और कच्चे-कच्चे रख दिये।'' तब उन्होंने कहा, ''आप वृक्ष पर थे आप ऊपर ही पके-पके खा लेते और कच्चे नीचे डालते। आपने अच्छा नहीं किया और यदि इसने बुरा किया था तो आप इसे कुछ कहते, इसके पिता ने तो आपका कुछ नहीं बिगाड़ा था। उसे अपशब्द क्यों कहे?'' नन्दकिशोर चुप खड़ा रहा।

तब वह अपने पुत्र से कहने लगे कि जब यह वृक्ष पर चढ़ा और इसने फल नीचे गिराये तो आपने पके-पके खाकर इसके लिए कच्चे-कच्चे क्यों रखे। यह आपका नौकर नहीं था। जैसे आप हैं, यह भी वैसा ही है। इसने परिश्रम किया इसको फल मिलना चाहिए था। आपका कार्य अनुचित है। वह भी चुप रहा।

तब आपने दोनों को कहा, ''अच्छा पाँच बार बैठो और उठो और आगे को ऐसा न करने का वचन दो।''

यही किया गया और बालकों को विदा किया गया। यह दोनों घटनाएँ मुझे मुम्बई के श्री नन्दकिशोरजी चोबे ने, जो आर्यसमाज मुम्बई के पुराने कार्यकर्त्ता हैं, बताई थीं, अतः मैं उनका आभार मानता हूँ।[1]

---

१. यह लेख १९४२ में प्रकाशित हुआ था।
श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी का बड़प्पन देखिए कि कृतज्ञतापूर्वक ये दोनों घटनाएँ सुनानेवाले नन्दकिशोरजी का नाम साथ में आदरपूर्वक दिया है। आज तो पी-एच०डी० उपाधिधारी पूरी-की-पूरी पुस्तक चुराकर दो शब्द धन्यवाद के भी नहीं लिखते।

वे गालियाँ सुनकर भी हँसते थे

श्री उमरावसिंहजी पीलीभीत

श्री उमरावसिंहजी आर्यसमाज पीलीभीत के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता थे। वहाँ उनको मन्त्रीजी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आप व्यापार-कार्य किया करते थे। आप अपनी दुकान पर नियत समय पर ही बैठते थे। साधारणरूप में जैसे दुकानदार सारा दिन बैठते हैं, वे न बैठते थे। उन्होंने दो स्थान नियत किये हुए थे, उन दोनों स्थानों पर बैठकर वे आर्यसमाज का प्रचार किया करते थे।

इसके अतिरिक्त वह रात को किसी-किसी को सत्यार्थप्रकाश भी सुनाया करते थे। उनमें से एक व्यक्ति का नाम श्री जानकीदास मुख़तार है। आपने मुझे सुनाया कि वह उनके गृह पर उनको सत्यार्थप्रकाश सुनाया करते थे, यदि किसी समय आलस्य हो तो उस आलस्य को दूर करने के लिए वे अनेक उपाय भी करते थे। श्री जानकीदासजी उस समय आर्यसमाजी न थे और वे नगर में आर्यसमाजी प्रसिद्ध थे। इसलिए उनके आने पर श्री जानकीदासजी के पूज्य पिता विचारते थे कि वह हमारे पुत्र को आर्यसमाजी बनाएगा। इसलिए वह श्री उमरावसिंहजी के आने को बुरा समझते थे और उन्होंने कई बार श्री उमरावसिंहजी को गालियाँ भी दीं, ताकि वे उनके गृह पर फिर न आएँ, परन्तु उनके आने में इससे भी कोई बाधा न पड़ी।

एक दिन उन्होंने गालियाँ दीं, वे श्री जानकीदासजी के पास बैठे रहे, जब वे अपने समय पर चलने लगे तो इन्होंने उनको कहा, "आप हमारे गृह पर न आया करें, क्योंकि मेरे पिताजी आपको गालियाँ देते हैं।"

उन्होंने हँसकर उत्तर दिया, "यह जैसे आपके पिता हैं, वैसे मेरे भी पितावत् ही हैं। मेरे पिताजी भी कई बार मुझे गालियाँ दे देते हैं। जब मैं उनकी गालियों से घर नहीं छोड़ता तो इनकी गालियों से यहाँ आना क्यों छोड़ूँ?"

श्री उमरावसिंहजी पूर्ववत् आते रहे। उनके सत्संग से ही श्री जानकीदासजी आर्यसमाजी बने और इन्होंने अपनी सन्तान को भी आर्यसमाजी बनाया।

प्रत्येक उपदेशक को उमरावसिंहजी की इस घटना से शिक्षा ग्रहण करने का यत्न करना चाहिए।

आर्यसमाज का भक्त
श्री हाजी अल्लाह रखीया रहमतुल्लाजी मुम्बई

हाजी साहिब कच्छ (गुजरात) के रहनेवाले थे और मुम्बई में सोने का व्यापार किया करते थे। आप धार्मिक दृष्टि से आर्यसमाजी थे और सर्वदा कहा करते थे कि संसार में धर्म तो वैदिक धर्म ही है। वे आर्यसमाज के सत्संग में नियमपूर्वक आया करते थे। वे आर्यसमाज के सिद्धान्तों से अभिज्ञ थे।

मुझे श्री नन्दकिशोर चौबे ने बतलाया कि एक बार एक स्नातक ने कहा "किसी को कुछ पूछना हो तो पूछ ले"। तब हाजीजी ने एक प्रश्न किया। स्नातकजी ने उसका उत्तर दिया। तब आपने कहा यह उत्तर ठीक नहीं है। स्नातकजी ने कहा, "ठीक है।"

हाजीजी ने सत्यार्थप्रकाश मँगवाया और दिखाया जो कुछ वे कहते हैं वह ठीक है। पुस्तक में उनका मत देखकर आर्यसमाजी लज्जित हुए। हाजीजी ने कहा, "आपने तप किया है। जङ्गल में रहे हैं और गुरुओं के पास रहे हैं, परन्तु आपने ऋषि दयानन्द लिखित वैदिक सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त नहीं किया।"

आप सर्वदा विद्यार्थियों को पुस्तकें और छात्रवृत्ति दिया करते थे। निर्धनों की सहायता किया करते थे। कोई कहता था कि आप शुद्ध क्यों नहीं होते तो आप उत्तर दिया करते थे, "मैं अशुद्ध नहीं हूँ।"

आप आर्यसमाज में कई बार अपने पुत्रों को भी लाया करते थे। आपने मरते समय पुत्रों को धन देकर लाखों का ट्रस्ट बनाया जिससे छात्रों को सहायता और रोगियों की चिकित्सा की जाएगी।

आर्यसमाज ने जब मन्दिर के पिछले भाग में मकान बनवाया और वह बनकर तैयार हो गया तब श्री विजयशङ्करजी प्रधान ने साप्ताहिक सत्संग में कहा कि इस मकान के बनवाने में आर्यसमाज पर ऋण हो गया है। अब अन्य कार्यों के साथ-साथ आर्यसमाज को यह ऋण भी उतारना होगा। आपने उठकर पूछा कि आर्यसमाज पर कितना ऋण है तो प्रधानजी ने कहा पाँच सहस्र रुपये (५०००.००) है।

आपने कहा, "मेरी दुकान से आकर ले-लो।" वे गये। आपने प्रधानजी को ५०००.०० का चैक दे दिया। उस मकान पर जो शिला

लगाई गई है, जिसपर दानियों के नाम हैं, उनमें सबसे प्रथम हाजीजी का ही नाम है।

आपके नाम से प्रत्येक व्यक्ति उनको वैदिक धर्मी नहीं समझेगा, परन्तु हाजी अल्लाह रखीया रहमतुल्लाजी उतने ही वैदिक धर्मी थे जितना कि कोई वैदिक धर्मी हो सकता है।

सरदार सुचेतसिंहजी[१]

सरदार सुचेतसिंहजी ज़िला गुरदासपुर में छीना ग्राम के निवासी थे। इस ग्राम में प्रधानता जाटों की है और उनका गोत्र छीना है। इसी कारण ग्राम का नाम भी छीना है।

आप नम्बरदार, ज़ैलदार, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्य व आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद पर रहे, अतः जिले में प्रख्यात थे। इस जिले में सरदार बिशनसिंहजी रईस भागोवाल आरम्भ समय के आर्यसमाजियों में से थे। उनके संग से ही आप आर्यसमाजी बने थे और गुरदासपुर जिले के वेदप्रचार-मण्डल के अध्यक्ष थे।

आपकी रुचि वेद-प्रचार में अधिक थी[२]। आप प्रायः आर्यसमाज के उत्सवों में सम्मिलित हुआ करते थे। आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के भी सदस्य थे।

आपके सन्तान नहीं थी। पत्नी का देहान्त होने पर आपने दूसरा विवाह भी नहीं किया था। आपके एक भ्राता थे, जिनका स्वर्गवास हो गया था। गृहकृत्य उनकी भावज ही सँभालती थी। उसके भी कोई सन्तान न थी।

सम्बन्धियों ने उनकी सम्पत्ति के लोभ से उनको मार दिया, परन्तु पुलिस ने परिश्रम करके पूरा-पूरा पता लगा लिया। उनके मारे जाने पर उनकी भावज भी अपने भाई के पास चली गई, वहाँ जाते समय वह सम्पत्ति भी अपने साथ ले-गई। उस सम्पत्ति में उनके कागज पत्रादि भी थे। उनके पत्रों में एक पत्र उनके हाथ का लिखा मिला जो उनकी इच्छा को प्रकट करता था।

उसकी भावज और भावज के भाई अनपढ़ थे। उन्होंने वे काग़ज़

---

१. यह लेख १९४२ में प्रकाशित हुआ था।

२. पं० लेखराम व स्वामी श्रद्धानन्द युग में भागोवाल व छीना ग्राम में उत्सवों में वेद-प्रचार सुनने के लिये सहस्रों जन उमड़-घुमड़कर आया करते थे। अब दोनों ग्रामों में आर्यसमाज नहीं है।

एक व्यक्ति को दिखाये ताकि पता हो उनमें क्या लिखा है। उस व्यक्ति ने जब कागज़ पढ़े, उसे वह कागज़ भी मिला जिसमें उनकी इच्छा लिखी थी। उसने आकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में सूचना दी। सभा ने वह पत्र प्राप्त कर लिया और जब देखा तो उसमें लिखा था मेरी सब सम्पत्ति (चल तथा अचल) आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को मिले और वह इसकी आय से जिले में वेद-प्रचार करे और दो व्यक्तियों को जो उसकी सेवा किया करते थे पाँच-पाँच रुपये प्रतिमास उनके जीवनपर्यन्त दिये जाएँ।

उनकी भूमि का सरफज़ल हुसैन जी ८० सहस्र देते थे[१]। वे उस समय लाख माँगते थे। इस प्रकार एक लाख या ८० सहस्र की सम्पत्ति सरदार सुचेतसिंहजी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को वेद-प्रचार के लिए लिखकर दे गये।

तब उस भूमि आदि सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए सभा ने न्यायालय की शरण ली।

सरदारजी का एक बाग छीना-स्टेशन के साथ ही है जो जिले में अच्छे बागों में समझा जाता था।[२] छीना अमृतसर से पठानकोट को जाते समय बटाला और धारीवाल के बीच का स्टेशन है।

इस प्रकार सरदार सुचेतसिंहजी अपनी सारी सम्पत्ति सभा को दे गये और जीवनभर आर्यसमाज के प्रचार में भाग लेते रहे। साधारण रीति से पंजाब में ग्रामों में प्रचार अम्बाला कमिश्नरी में ही अधिक है। शेष पंजाब में ग्रामों में प्रचार की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है और यदि प्रचार किया जाए तो प्रत्येक जिले में सफलता प्राप्त हो सकती है।

परन्तु सफलता उसी समय होगी जब दयानन्द के प्रचारक दयानन्द के चरण-चिह्नों पर चलकर काम करें अथवा सरदार सुचेतसिंहजी जैसे वेद-प्रचार के प्रेमी हों जो अपना समय और सम्पत्ति वेद-प्रचार पर निछावर करनेवाले हों।

---

१. सरफज़ल हुसैन पंजाब के एक प्रख्यात राजनेता थे, मन्त्री भी रहे। छीना के पास बटाला के निवासी थे। उस काल में यह राशि आज की दृष्टि से बीस लाख से भी ऊपर बनती है।

२. गुरदासपुर जिला आमों के बागों के लिए विख्यात रहा है। यह बाग मैंने भी देखा है। मैं वहाँ सरदारजी की स्मृति में बसन्त मेले पर प्रचारार्थ जाया करता था। अब तो सभा ने सब-कुछ बेच दिया है। प्रचार में सभा की रुचि नहीं है।

सरदार हरिसिंहजी

हरीसिंहजी एक छोटे-से ग्राम के निवासी थे। इनके आर्यसमाजी बनने और आर्यसमाज का काम करने की कुछ बातें पाठकों की भेंट करता हूँ। सम्भव है किसी को कुछ लाभ हो जाए।

ये ग्राम भेंडीरोड़ा, थाना डेहलों, जिला लुधियाना के निवासी थे। जाट-परिवार में जन्म हुआ था। तीसरी कक्षा तक उर्दू में शिक्षा प्राप्त की थी। ग्राम में एक साधु रहता था उससे गुरुमुखी-लिपि सीखी थी। इस प्रकार इनकी सारी शिक्षा यही थी।

इसके पश्चात् घर के कृषिकार्य में सम्बन्धियों के साथ कार्य करने लगे। विवाह भी हो गया। जिस समय युवा अवस्था को प्राप्त हुए उस समय उनके ग्राम में पं० नारायणदासजी गुड़्दी-निवासी ने भागवत कथा का पाठ आरम्भ किया। नर-नारी श्रद्धा से कथा सुना करते थे। उन श्रोताओं में यह भी एक थे। उनसे इन्होंने देवनागरी लिपि की शिक्षा प्राप्त की। एक दिन इन्होंने बातचीत में उनसे पूछा, ''जपने के लिए उत्तम मन्त्र कौन-सा है?''

पं० नारायणदासजी ने उत्तर दिया, गुरु-मन्त्र गायत्री है। इन्होंने प्रार्थना की कि आप मुझे गायत्रीमन्त्र सिखा दें। पण्डितजी ने उत्तर दिया, ''जाट शूद्र होते हैं। आप जाट हैं, इसलिए आपको न तो गायत्री मन्त्र सिखलाया जा सकता है न ही आप इसका पाठ कर सकते हैं।''

इन्होंने कहा, ''पण्डितजी हमारे वंश में जहाँ तक मुझे ज्ञान है, हमने कभी मांस-मदिरा का व्यवहार नहीं किया। साधारण व्यवहार में हमने बुरी बातों से बचने का प्रयत्न किया है। कई ब्राह्मण भी ऐसे मिल जाते हैं जिनमें कोई दोष होता है, उन्हें गायत्री का अधिकार है, हमें नहीं। यह बात मेरी समझ में नहीं आई।''

पं० नारायणदासजी ने उत्तर दिया कि शास्त्र की ऐसी ही मर्यादा है। इसमें समझ में आने-न-आने का प्रश्न ही नहीं उठता। शास्त्र में स्त्री-शूद्र को गायत्री का अधिकार नहीं है। इसलिए मैं आपको गायत्री नहीं सिखा सकता।

इस उत्तर से इनकी सन्तुष्टि तो न हुई, किन्तु कर भी कुछ न सकते थे। चित्त में दुःखी भी थे। पश्चात्ताप भी था कि मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था कि जिससे मन्त्र सीखने व जपने का भी

अधिकार नहीं है, परन्तु चुप रहने के अतिरिक्त कोई उपाय भी नहीं था। कथा समाप्त हुई। पण्डितजी अपने ग्राम चले गये। विषय समाप्त हुआ। भेंडीरोड़ा से पाँच कोस पर रायकोट कस्बा है। ग्राम-निवासी आवश्यक वस्तुएँ क्रय करने के लिए रायकोट आते-जाते थे। उसी प्रथा के अनुसार ये एक दिन रायकोट गये हुए थे। वहाँ बाजार में सायंकाल के समय एक पण्डित उपदेश दे रहा था। यह वहाँ सुनने के लिए खड़े हो गये। एक दुकानदार ने कहा, "चौधरीजी कोई काम करें। यह तो नास्तिक है। देवी, देवता, तीर्थ, श्राद्ध सबका खण्डन करता है। इसकी बातों में समय नष्ट क्यों करते हैं?"

इन्होंने उसे उत्तर दिया, "लालाजी! सुनने में तो कोई हानि प्रतीत नहीं होती। सुनकर उस बात को मानना न मानना अपनी इच्छा की बात है।" इसलिए वहाँ खड़े होकर व्याख्यान सुनने लग गये। दैवयोग से आर्यपण्डित इस विषय पर बोल रहे थे कि वेद पढ़ने का सबको अधिकार है। इसे वह अपने ढङ्ग से समझा रहे थे। जिस समय व्याख्यान समाप्त हुआ और लोग इधर-उधर चले गये तो ये पण्डितजी की सेवा में उपस्थित हुए और पूछा, "पण्डितजी मैं एक ग्रामीण जाट हूँ। मुझे थोड़ी-सी उर्दू, गुरुमुखी और हिन्दी-लिपि भी थोड़ी-सी आती है। क्या आप मुझे गायत्रीमन्त्र बता देंगे?"

पण्डितजी ने उत्तर दिया, "हाँ बता दूँगा। आप मेरे साथ चलें।"

यह उत्तर सुनकर इनका दिल प्रसन्न हो गया। गायत्रीमन्त्र सीखने की इच्छा बड़ी प्रतीक्षा के बाद पूरी होते देख उनके साथ जहाँ वे ठहरे हुए थे, गये। उन्होंने सन्ध्या की पुस्तक निकालकर उसमें से गायत्रीमन्त्र दिखाकर कहा, यह गायत्री है। आप पढ़ लें। कहें तो मैं पाठ करवाये देता हूँ। शेष यह पुस्तक सन्ध्या की है जो प्रातः और सायंकाल की जाती है। इन्होंने कहा, पण्डितजी आप पाठ करवा दें। उन्होंने पाठ करवा दिया और ये सन्ध्या की पुस्तक क्रय करके, लेकर चले आये। घर में आकर गायत्रीमन्त्र तो कण्ठ कर लिया और सन्ध्या का पाठ करने का यत्न किया, किन्तु अच्छी प्रकार से पढ़ नहीं सके। फिर रायकोट जाकर आर्यसमाजियों से मिले। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश क्रय करने को कहा। इन्होंने वह भी ले-लिया और आकर उसे पढ़ना आरम्भ किया। जैसा स्वाभाविक था, कहीं समझे, कहीं न समझे, पाठ करते रहे। उस समय निश्चय किया कि संस्कृत पढ़े बिना यह काम तो न होगा।

रायकोट में पं० दुर्गादत्तजी हुआ करते थे। उनसे प्रार्थना की। पण्डितजी, "मुझे संस्कृत पढ़ा दें।" उन्होंने कहा कि, सारस्वत पढ़ लें। यह उनसे सारस्वत पढ़ने लगे। ग्राम में घर का काम भी करते थे। इसलिए कुछ संस्कृत का बोध हो गया। फिर इन्होंने आर्यपण्डितों को बुलाकर यज्ञोपवीत लिया और ग्राम में प्रचार आरम्भ करवाया। धीरे-धीरे इनके ढोडे में जो १५-२० घर थे वे सब आर्यसमाजी हो गये। इसके साथ-साथ ग्राम में ब्राह्मणों का विरोध बढ़ गया। वे ग्राम-निवासियों को साथ लेकर इनका विरोध करने लगे। उनमें भी लग्न थी। ये अपना काम करते थे।

अन्त में भेंडीरोड़ा में एक शास्त्रार्थ हुआ जिसमें आर्यसमाज और सनातनधर्म की टक्कर हुई। प्रायः वह क्षेत्र सिख प्रधान है। सिखों की गाथाओं के लोगों के संस्कार थे। आर्यसमाज सर्वथा नई वस्तु थी। इसलिए श्रोताओं का खूब इकट्ठ हुआ। शास्त्रार्थ भी मूर्त्तिपूजा पर छिड़ गया। इसमें आर्यसमाज की विजय स्वाभाविक थी, क्योंकि सिखों में ग्रन्थ की पूजा तो है, मूर्त्ति की पूजा नहीं। ब्राह्मणों में मूर्त्ति-पूजा थी, परन्तु उनकी संख्या अल्प थी। इसलिए विजय का सेहरा आर्यसमाज के सिर बँधा।

दैवयोग से एक घटना और हो गई। जो धन प्राप्त हुआ, सनातन धर्मी तीन पण्डित थे। उनकी बटवारे पर कलह हो गई। आर्यसमाजी पाँच थे जो धन मिला सभा को भेजकर आगे चल दिये। इसका प्रभाव भी आर्यसमाज के विषय में जनता पर बहुत अच्छा पड़ा।

इसके पश्चात् इन्होंने अन्य ग्रामों में प्रचार आरम्भ किया। लताला में ला० उधोरामजी को आर्यसमाजी बनाया। वहाँ उदासी साधुओं का डेरा था। उसमें संस्कृत पाठशाला थी।[1] उसके अध्यापकों में प्रचार किया। उनमें से कइयों को आर्यसमाजी बनाया। मालेरकोटला के पास एक ग्राम में टीकमसिंह नम्बरदार के परिवार को आर्यसमाजी बनाया। इस प्रकार धीरे-धीरे इन्होंने जहाँ-जहाँ इनका सम्बन्ध था अनेक को आर्यसमाज के संस्कार दिये।

इनके घर में अपनी सन्तान न थी। इनका भतीजा सम्पूर्णसिंह अब भी है। इसको इन्होंने पहले स्कूल में पढ़ाया फिर संस्कृत पढ़ाई।

---

१. लताला में स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी की ननिहाल थी। यहीं आपका पालन-पोषण हुआ था। इसी डेरे के पं० विष्णुदासजी के सत्संग से स्वामीजी महाराज आर्यसमाजी बने थे।

यह उनका विस्तृत कार्यक्षेत्र था। आचार-विषय में, सत्य बोलने में ग्राम में आसपास इनकी धाक थी। इस विषय में एक बात लिखकर समाप्त करना चाहता हूँ।

उस ग्राम में एक घटना घट गई। उसकी जाँच के लिए थानेदार साहेब आये। वे भी बहुत सज्जन पुरुष थे, घूस आदि न लेते थे। पक्ष-विपक्ष में लोगों ने बातें कहीं। दोनों पक्षों की बातें सुनकर वह किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँच सके। सन्दिग्ध अवस्था में वह कुछ करने से संकोच करते थे। उन्होंने पूछा इस ग्राम में कोई ऐसा व्यक्ति है जो निष्पक्ष समझा जाता हो। लोगों ने कहा, यहाँ हरिसिंह है, किन्तु वह किसी झगड़े में आते ही नहीं। वह पुस्तकें पढ़ने व अपने घर पर लड़कियों को पढ़ाने या कहीं पर धर्म की बातें करने में लगे रहते हैं। थानेदार ने इनको बुलाया और कहा, 'हरिसिंह! यहाँ जो घटना घटी है, मैं उसके विषय में कुछ पूछना चाहता हूँ।"

इन्होंने कहा, "मैं तो किसी का साक्षी नहीं हूँ। आप मुझसे क्यों पूछते हैं? गाँववालों से पूछें। नम्बरदारों से पूछें।"

थानेदार ने कहा, "नहीं मुझे विश्वास है कि आप मुझे ठीक-ठीक बतला देंगे। इसलिए मैं आपसे पूछना चाहता हूँ।"

हरिसिंह ने कहा, "यदि आपने पूछना है तो उन दोनों को बुलालें जिनका विवाद है ताकि उनको मेरे विषय में कोई शिकायत न हो।" थानेदार ने बहुत अच्छा कहकर दोनों को बुलवा लिया। ये चारों एक स्थान पर बैठ गये।

हरिसिंह ने उन दोनों को सम्बोधित करके कहा, "देखो भाई! मैंने कभी साक्षी नहीं दी। यह भी आप जानते हैं कि मेरा ग्राम में किसी के साथ कोई झगड़ा नहीं। आपके साथ भी कोई विवाद नहीं। थानेदारजी मुझे विवश कर रहे हैं कि जो आपका झगड़ा है, बताऊँ वह क्या है? न चाहते हुए भी मुझे कहना पड़ता है। इस अवस्था में यदि आप मेरी सहायता कर सकते हैं तो करें। मैं थानेदार साहेब को यह तो कह सकता हूँ कि आप इस झगड़े को बढ़ाने की अपेक्षा निपटाने का यत्न करें, किन्तु न्याय तो होना ही चाहिए।"

यह बात सुनकर थानेदार से उन दोनों ने कहा, "हमें हरिसिंह पर विश्वास है जो कुछ इन्होंने कहा है हमपर इसका इस समय प्रभाव है! इसलिए हमें दो मिनट बाहर जाकर सम्मत्ति करने की आज्ञा दें।" थानेदार ने तथास्तु कहा। वे बाहर जाकर सम्मत्ति करके लौट आये

और आकर कहा कि थानेदारजी ये हरिसिंह बैठे हैं। हम आपको सच-सच बतलाये देते हैं, क्या हुआ?

इसलिए हरिसिंह को बोलने पर विवश न करें यदि हम झूठ कहें तो बतला दें। थानेदार ने कहा कहो। उन्होंने जो घटना थी, सच-सच बतला दी। थानेदार ने सारी घटना समझ ली और हरिसिंह का धन्यवाद करते हुए कहा, आप धन्य हैं, जो इस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इन दोनों की संधि करवाऊँगा, झगड़ा बढ़ाऊगा नहीं। इसलिए आप प्रसन्नतापूर्वक जा सकते हैं।

वे अपने स्थान पर चले गये। इस पवित्र जीवन से धर्म-प्रेम, संस्कृत-शिक्षा, प्रचार की लग्न, सत्यतापूर्वक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा कोई लेना चाहे तो ले-सकता है।

अथक धर्म-प्रचारक, वीर संन्यासी स्वामी श्री धर्मानन्दजी महाराज[१]

स्वामी श्री धर्मानन्दजी मजीठा के समीप एक ग्राम जलालपुर, जिला अमृतसर में, संवत् १९०८ वि० (१८५२) में उत्पन्न हुए थे। जन्म की दृष्टि से ये धीमान ब्राह्मण थे। युवावस्था में आप सिख-धर्म के अनुयायी हुए। कुछ समय पश्चात् नामधारी सिख हो गये। आप पंजाबी के कवि थे। आप पंजाबीभाषा में भजन, कवित्त, सवैये आदि छन्द बनाते थे। आपके उस समय के बनाये हुए छन्दों का जो संग्रह है, वह एक बृहत् पुस्तक है। कई ग्रामों में उनके बनाये ग्रन्थ का पाठ पुण्य मानकर किया जाता था। उस समय आपका शुभ नाम बूटासिंहजी था।

आप ग्रामों में अपने मत का प्रचार भी करते थे। जिस समय आपने अधिक प्रचार किया तब गुलाबदासिये थे। पश्चात् आप साधुवृत्ति में रहने लगे। उस समय आपने अपना नाम बूटादास रख लिया। गुलाबदासी होने के कारण आपके विचार नवीनवेदान्त के थे। आपके लेख भी प्रायः नवीनवेदान्त के पोषक होते थे तथा कर्मकाण्ड का खण्डन किया करते थे।

---

१. यह लेख 'आर्य' मासिक लाहौर के अगस्त १९४० ई० के अङ्क में श्री स्वामी धर्मानन्दजी महाराज शीर्षक से प्रकाशित हुआ। मुख-पृष्ठ पर श्री स्वामीजी के चित्र के साथ दिये शब्दों को हमने शीर्षक बनाया है।

उस समय उनके सत्सङ्गियों ने उनसे प्रार्थना की कि इस समय मजीठा शामपुर आदि में लोग आर्यसमाजी हो गये हैं। यदि आप इनका खण्डन लिखें तो अच्छा हो। आपने उस समय सत्यार्थप्रकाश माँगा ताकि उसे पढ़कर प्रथम देख लें कि आर्यसमाजियों का सिद्धान्त क्या है। जानकर ही खण्डन किया जा सकता है। आर्यसमाज के प्रधान ने उनको सत्यार्थप्रकाश पढ़ने के लिए दिया।

जिस समय वे साधु थे एक बार अपने ग्राम में भ्रमण करते गये। वहाँ कुछ दिन निवास किया, ग्राम के युवक तथा वृद्ध सत्सङ्ग के लिए उनके पास आया करते थे। एक दिन कुछ दुष्ट युवकों ने विचार किया कि बूटादास को खराब करना चाहिए। यह विचार करके उन्होंने एक दुष्टा को गाँठा और उसके साथ निश्चय किया कि रात को जिस समय सब लोग उनके पास से चले आएँ तब आप उनके पास जाएँ। उसने इसे स्वीकार किया। उसी विचार के अनुसार एक रात को उस स्त्री ने जब सब लोग चले आये और श्री बूटादासजी अपनी शय्या पर लेट गये, आकर उनके पग दबाने आरम्भ किये। स्वामीजी ने समझा कि कोई युवक आया है और पग दबा रहा है।

उन्होंने कहा, न भाई अब सोने दे और तू अपने गृह को जा। परन्तु उसने अपना काम जारी रखा। आपने मुख से वस्त्र उठाकर देखा तो पता चला कि यह युवक नहीं, यह तो युवती है। आप प्रथम तो घबरा गये, परन्तु शीघ्र ही सँभल गये। आपने सँभलते ही कहा आप ठहरें मैं पेशाब करके अभी आता हूँ। आप कमरे से बाहर निकल गये और द्वार बन्द करके साँकल लगा दी और बाहर आकर कूप पर बैठ गये और शीत ऋतु की सारी रात कूप पर ही बैठकर व्यतीत की। इसी घटना को स्वर्गीय पं० चमूपतिजी ने आर्य-पत्र में–

'अहो सारी रात काटी शीत में' शीर्षक से पद्यों में लिखा था।[1] उषाकाल में द्वार पर आकर कहा, देवी! यदि आप चुपचाप गृह को जाना चाहें तो मैं द्वार खोल देता हूँ। अन्यथा मैं चला, कोई

---

१. आर्यसमाज में प्रवेश के समय भी आपको सन्त बूटासिंह कहा व लिखा जाता था। आप बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में आर्य बन गये। यह घटना ग्राम के बाहर कूप पर घटी। वहाँ आपके भक्त एक कृषक ने आपको कुटिया बनवा दी थी। आते-जाते वहाँ कभी विश्राम किया करते थे। सत्सङ्ग भी होता था। घटना का सबको पता चल ही गया। इससे सब ओर आर्यसमाज का यश फैला।

आनेवाला ही द्वार खोलेगा। उस देवी ने द्वार खोलने की प्रार्थना की। आपने द्वार खोल दिया और वह चली गई।

इस घटना से आपके ब्रह्मचर्य, इन्द्रियदमन-का परिचय मिलता है और इसी घटना से उस ग्राम में और समीपवर्ती प्रान्त में उनके साधुपन और सदाचार की धाक बैठ गई।

सत्यार्थप्रकाश का पाठ करके आपका विचार उसका खण्डन करने का था, परन्तु प्रभाव उलटा ही हुआ। आपके विचार उसके पाठ से आर्यसमाजी हो गये और उस समय से आप आर्यसमाज के प्रचारक बन गये और उस समय से ही नवीनवेदान्त का खण्डन और आर्यसमाज का मण्डन करना आरम्भ किया। स्वयं भजन बनाकर गाते थे। प्रथम वह मद्यनिषेध का प्रचार किया करते थे। आपके भजन दीर्घकाय होते थे।

आप जिस समय जिला अमृतसर में प्रचार किया करते थे उस समय आपके साथी स्वामी धीरानन्दजी (उस समय महाशय कृष्णजी अमृतसरी) लाला चूनीलालजी आदि सज्जन थे। आपने अपने परिवार को भी आर्यसमाजी बनाया। आपकी भगिनी भी आर्यसमाज में प्रचार का कार्य करती थी। आपने अपने प्रचार-समय में कई बालकों को अनाथालय और गुरुकुलों में प्रविष्ट कराया था। उदाहरणार्थ पं० मुनीश्वरदेवजी सिद्धान्तशिरोमणिजी का नाम लिया जा सकता है। इनको उन्होंने गुरुकुल में प्रविष्ट कराया था। आर्यसमाज में आकर आपका नाम स्वामी धर्मानन्द हो गया।

एक उत्सव पर वे मेरे साथ ही थे। यह वह उत्सव था जो पटियाला अभियोग के पश्चात् पहला ही उत्सव था। आपके दर्शन राजपुरा स्टेशन पर हुए। गाड़ी में बैठकर मैंने साधारण रूप में कहा, "स्वामीजी! कोई भजन सुनाएँ। आपने भजन गाना आरम्भ किया, जिसकी टेक थी, 'कुलयुग आ गया घोर सिंघजी'। आपका यह भजन पटियाला स्टेशन गाड़ी के पहुँचने पर ही जाकर समाप्त हुआ। उसी उत्सव पर उन्होंने कहा था कि आर्यसमाजी बनने पर मेरी बड़ी हानि हो गई। मैंने पूछा, "क्या हानि हुई?" हँसकर उत्तर दिया, "प्रथम तो मैं ब्रह्म था अब जीव बन गया हूँ। उस समय लोग मेरे दर्शनों को आते थे, मेरी पूजा होती थी, अब मैं प्रचारार्थ मारा-मारा फिरता हूँ।"

आप वास्तव में मस्त और नम्र थे। आप अन्त समय तक

आर्यसमाज का प्रचार करते रहे। जिला अमृतसर को सामान्यरूप से और मजीठादि समाजों को उनके कार्य पर अभिमान करना चाहिए। आर्यसमाज को उनके त्याग पर गौरवान्वित होना चाहिए।

इनकी पोज़ीशन श्री जीवनलालजी सिंधी से मिलती-जुलती थी।

स्वामीजी बड़े निर्भीक प्रचारक थे। एक बार वे वैशाखी के अवसर पर प्रचार के लिए कटासराज[1] के मेले पर गये। वहाँ वे प्रचार कर रहे थे। कुछ पौराणिक साधुओं ने उन्हें मारने की धमकी दी। वे हँसकर कहने लगे, ''आओ! भाई मार लो। यह चर्खा पुराना हो गया है। तुम्हारी कृपा से नया मिल जाए, तो अच्छा है।''

इसी प्रकार वे सत्तोवाल गये। वहाँ एक मुसलमान फ़क़ीर साईं इलाहीबख़श रहता था। वह अपने स्थान पर एक मेला लगाया करता था। स्वामीजी ने साईं इलाहीबख़श से बात-चीत करनी चाही, किन्तु उसके चेले-चाँटों ने कहा, ''साईंजी किसी से बात नहीं करते।'' स्वामीजी ने देखा, वहाँ वेश्याएँ भी आई हुई हैं। भङ्ग, चरस, अफ़ीम, गाँजा, तमाखू, शराब आदि मादक द्रव्यों का लङ्गर लगा हुआ है। स्वामीजी इस दृश्य को देखकर बहुत विक्षुब्ध हुए। उनकी साईं इलाहीबख़श से वार्तालाप करने की इच्छा और भी प्रबल हो उठी। वहाँ खड़े होकर वे नशों के विरोध में अपने बनाये भजन ऊँचे स्वर से गाने लगे। इसपर मेले में हलचल-सी मच गई। इस हलचल को देख-सुनकर साईं की मौनमुद्रा टूटी और उसने स्वामीजी को अपने पास बुलाकर उनसे बातचीत की। स्वामीजी ने उसे नशों के दोष बताकर कहा, ''तुम साधु होकर लोगों को कुमार्ग पर चलाते हो। भङ्ग, चरस आदि पिलाते हो।''

इसी प्रकार की स्वामीजी की निर्भीकता की और भी बहुत-सी घटनाएँ हैं।

स्वामीजी अत्यन्त निर्लोभी एवं अपरिग्रही थे। स्वामीजी एक बार बहुत रुग्ण पड़ गये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मन्त्री महाशय कृष्ण ने दस रुपये मनीआर्डर से उनकी सेवा में भेजे। स्वामीजी ने अपने 'आर्यकोश' में से (अपने बटुवे को वे आर्यकोश कहा करते थे) सारी सम्पत्ति साथ मिलाकर वे रुपये वापस कर दिये।

लगभग डेढ़-दो सौ स्थानों में वैदिक धर्म का सन्देश सुनाकर रोगी पड़ गये। उस अवस्था में मजीठा के आर्यों ने बहुत सेवा की।

---

१. रावलपिण्डी के समीप हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ था।

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उनके जन्मस्थान के लोग बहुत आग्रह, अनुरोध और प्रीति से उन्हें जलालपुर ले-गये। जाते हुए स्वामीजी मजीठावालों को कह गये—मेरे दिन समीप हैं। मृत्यु का समाचार सुनकर आप वहाँ अवश्य आना। मृत्यु के दिन 'ओम्' का जप करते हुए अन्तिम श्वास लिये।

वेद-पथ मासिक में प्रकाशित एक लेख में स्वामी धर्मानन्दजी के विषय में लिखा था—

आर्यसमाज के संन्यासियों में एक स्वामी धर्मानन्दजी थे। वे विशेष व्याख्याता न थे। उनको जिला अमृतसर के आर्यसमाजी भली प्रकार जानते हैं। आर्यसमाज में आने से पूर्व वे एक बहुत बड़े समुदाय के माननीय धर्मगुरु एवं श्रद्धेय थे। उनका अपना लिखा ग्रन्थ सिखों के धर्मपुस्तक के आकार का था, किन्तु वह लिखित ही रहा, छपा नहीं। इस कारण समाप्त हो गया। उस समय उनका शिष्यवर्ग भी पर्याप्त था। वह शोक व प्रसन्नता के अवसर पर उसी पुस्तक का पाठ किया करते थे। उस समय वे आर्यसमाजी न थे।

एक समय उनके श्रद्धालुओं ने उनसे प्रार्थना की, महाराज आप आर्यसमाज के निषेध में भी कुछ शब्द लिखें। उन्होंने उत्तर दिया मुझे उनके विषय में ज्ञान ही नहीं है, लिखूँ तो क्या लिखूँ? तब भक्तों ने कहा, हम आपको उनका पुस्तक देते हैं। आप पढ़कर देख लें। उन्होंने इसे स्वीकार किया। भक्तों ने सत्यार्थप्रकाश लाकर दिया। वे पढ़ते रहे। जब पुस्तक समाप्त हुआ तो उन्होंने एक शब्द लिखा, उसकी मुझे केवल एक पंक्ति ही स्मरण है। जो इस प्रकार थी—

'वेला बीत गया, मैंनूं सज्जणां दी सार न आई।'

उन्होंने इस शब्द में अपने जीवन पर पश्चाताप किया था कि युवावस्था चली गई, वृद्धावस्था आ गई, युवास्था में आर्यसमाज-विषयक बोध ही न हुआ। अब शक्ति नहीं है, जो समाज की सेवा कर सकें।

उस शब्द को सुनकर भक्तों ने पूछा, महाराज अपना भाव स्पष्ट करें। उन्हों उत्तर दिया। आर्यसमाज का धर्म ही धर्म है। अन्य सब पन्थ हैं धर्म नहीं हैं। शोक है, इस बात का बोध समय पर न हुआ। अन्यथा मैं भी इस धर्म की कुछ सेवा करता।

उनका उसके पश्चात् का जीवन आर्यसमाज की सेवा में ही बीता। वे साधारण जनता में प्रचार करते थे और अपने पुराने भक्तों में भी श्रद्धाभाजन बने रहे। उनका जीवन सरल था और सेवाभाव

विशेषरूप से था। वे सर्वदा इस भाँति रहने का यत्न करते थे कि उनसे किसी को कष्ट न हो वे अपने आपसे अन्य के विचारों पर अधिक ध्यान देकर कालयापन करते थे। इसी कारण उनका जीवन व रहन-सहन रसमय था।

सत्यार्थप्रकाश और गायत्री-भक्त
ठाकुर देवीसिंहजी

ठाकुर देवीसिंहजी मुम्बई आर्यसमाज के पुराने कार्यकर्त्ताओं में से एक थे। आप ज़िला जौनपुर-निवासी थे और मुम्बई में ठेकेदारी का काम किया करते थे। आप अधिक विद्वान् न थे। आपका स्वभाव लोगों से मिलने का था। मिलकर साधारण बातचीत किया करते थे। जब कोई धर्म के विषय पर उनसे प्रश्न करता तो वह कह देते थे मैं आपको एक पुस्तक देता हूँ, प्रथम आप उसे पढ़ लें, यदि उससे आपका समाधान न हुआ तब फिर बात करना, फिर उसे वह सत्यार्थप्रकाश पढ़ने को देते थे यदि हिन्दी जानता हो तो महर्षि लिखित हिन्दी भाषा का सत्यार्थप्रकाश दिया करते थे, यदि वह न जानता हो तो जो भाषा वह जानता हो, अर्थात् गुजराती जानता हो तो गुजराती अनुवाद, मराठी जानता हो तो मराठी अनुवाद, अंग्रेजी जानता हो तो सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद उसे देते थे और पढ़ने का आग्रह करते थे। इस प्रकार आपने सत्यार्थप्रकाश दे-देकर अनेक आर्यसमाजी बनाये।

इसी प्रकार आप साधारण पुरुष, स्त्री और बालकों से पूछा करते थे कि क्या आपको गायत्री-मन्त्र आता है? यदि वे उत्तर 'न' में देते तो प्रेरणा करते थे कि गायत्री-मन्त्र पवित्र है। आर्यों का गुरुमन्त्र है। धर्मपुस्तकों में इसे कण्ठ करने की महिमा का वर्णन है। इसके जप करने का स्मृतियों में विधान है। आपको यह मन्त्र अवश्य कण्ठस्थ करना चाहिए। यदि कोई गायत्री-मन्त्र का पाठ सुना दे तो उसे कुछ-न-कुछ अवश्य देते थे। बालकों को चार आने (१/४ रुपया) और युवकों को एक रुपया प्रायः दिया करते थे और यदि कोई गायत्री-मन्त्र अर्थसहित सुना दे तो अधिक दिया करते थे।

इसी प्रकार आपने गायत्री-मन्त्र का प्रचार किया। इसलिए आप सत्यार्थप्रकाश और गायत्री-मन्त्र के भक्त थे।

मरने की तैयारी

श्री गयाप्रसादजी हैदराबाद

श्री गयाप्रसादजी आर्यसमाज हैदराबाद के पुराने कार्यकर्त्ताओं में से एक थे। मैंने उनके दर्शन किये हैं।

आप सरकारी नौकरी में थे और केशवरावजी की सम्मति से आर्यसमाज का काम किया करते थे। एक बार किसी भजनीक ने भजन गाने में आना-कानी की तब आपने कहा अच्छा आगे को इसका प्रबन्ध भी करना होगा। तब आपने गाना सीखना आरम्भ किया और गाना सीखकर आगे को आर्यसमाज में स्वयं भजन गाने लगे।

जिस समय आपने पैंशन ली तब भी आर्यसमाज के कामों में समय दिया करते थे। प्रतिमास जब पैंशन के रुपये लेने जाते थे तो आते समय चन्दन खरीदकर लाते थे। यह उनका नियम था। प्रतिमास चन्दन लाकर सुरक्षित रखना। अन्त में जब आप बीमार पड़े तो श्री विनायकरावजी को बुलाया। जहाँ और बातें की वहाँ यह भी कहा महर्षिजी ने शरीर के बोझ के सम चन्दन चिता के लिए लिखा है। मैंने चन्दन का प्रबन्ध कर रखा है। अमुक स्थान पर इतना चन्दन पड़ा है। पूछा, ''इतना वहाँ कैसे आ गया?''

आपने बताया मैं प्रतिमास खरीद कर वहाँ रखता रहा हूँ। मैंने वह अपनी अन्त्येष्टि के लिए ही जमा किया है।

आपकी धर्मपत्नी पास बैठी थीं। उनकी आँखों में अन्त्येष्टि की बात सुनकर आँसू आ गये। आपने कहा, आपने मेरे सहवास से कुछ नहीं सीखा। आपके पुत्र आज्ञाकारी हैं। आपको कोई कष्ट न होने देंगे और परमात्मा सबका रक्षक है। मरना तो सबको है। मरना मेरे लिए भी कोई नई बात नहीं है। यदि आप रोएँगी तो मुझे भी दुःख होगा। आप धैर्य करें और मुझे मौत की गोद में शान्ति से जाने दें।

आपकी धर्मपत्नी यह सुनकर चुप हो गई और आपने अपना शरीर प्रसन्नतापूर्वक, शान्ति से, परमात्मा का नाम स्मरण करते हुए त्यागा।

पण्डित चमूपतिजी[१]

पण्डितजी का जन्म-स्थान ख़ैरपुर टामेवाली राज्य भावलपुर[२] था। आपका वंश मेहता नाम से प्रसिद्ध था। इस प्रकार आपका नाम मेहता चम्पतराय था। आपने प्रथम स्कूल में दशम श्रेणी पढ़ी फिर कॉलेज में एक प्रकार के आप अध्यापक नियुक्त हो गये। तब आपने बी०ए० पास किया, फिर आप राज्य में कॉलेज के प्रोफ़ेसर हो गये।

वे विचित्र मनीषी (Genius) थे—आपने बी०ए० तक आर्यभाषा की वर्णमाला भी न पढ़ी थी। बी०ए० करने पर उन्हें प्रतीत हुआ कि उन्हें संस्कृत वर्णमाला=आर्यभाषा पढ़नी चाहिए। तब आपने वर्णमाला सीखकर संस्कृत पढ़नी आरम्भ की और एम०ए० संस्कृत से किया। इससे आपकी योग्यता का परिचय मिलता है। आप प्रथम ही उर्दू के गद्य, पद्य के लेखक थे और फिर आर्यभाषा के गद्य, पद्य लिखा करते थे। आपका उर्दू, फ़ारसी का तख़ुल्लस (उपनाम) 'सादिक' था और आर्यभाषा में उपनाम 'चातक' था।

रोक न कोई सका—आपने भावलपुर में आर्यसमाज के संस्कार ग्रहण किये और भावलपुरु में आर्यसमाज बनाने का यत्न किया। वहाँ के वृद्ध कहते थे, आप ऐसा न करें। आर्यसमाज का विरोध होगा, परन्तु आप अपने विचारों पर दृढ़ रहे और आर्यसमाज बनाया जो उनकी दृढ़ता का द्योतक है।

सिद्धान्तों के लिए घरबार तज दिया—आपने उर्दू में एक पुस्तक लिखी जिसमें महर्षि दयानन्दजी का विशेषण 'सरवरे आलम' लिखा था। इसी पर आपपर राज्य की ओर से अभियोग चला। न्यायाधीश ने निजीरूप में आपको बुलाया और कहा आप इस विशेषण को वापस ले-लें। आपने कहा यदि आप मुझे समझा दें तो लौटा लूँगा, अन्यथा नहीं। अन्त में उसी पर आपको राज्य (Princely state) से बाहर निकाला गया और आप मुलतान गुरुकुल में आचार्य हो गये। मुलतान में आपने अपना नाम चमूपति कर लिया। मुलतान से आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में उपदेशक हो गये और आजीवन सेवा का व्रत लिया। उस व्रत के अनुसार वे आजीवन सभा की सेवा

---

१. यह लेख १९४१ में प्रकाशित हुआ था।
२. बहावलपुर को पंजाब में भावलपुर भी कहते हैं।

में रहे।[1]

उनकी दानशीलता—जब आप उपदेशक थे तो जिस समाज के उत्सव पर जाया करते थे उस समाज में अपील के समय कुछ-न-कुछ धन दिया करते थे। पूछने पर आप कहा करते थे मुझे सभा जो दक्षिणा देती है उसमें भोजन भी सम्मिलित है और मैंने जो भोजन समाज में खाया है उसे वहाँ न खाकर घर पर खाता तो उतना पैसा तो देना ही चाहिए, इसलिए यह धन देता हूँ।

आपको सभा ने गुरुकुल (काङ्गड़ी) का प्रोफेसर नियुक्त किया। आप गुरुकुल में उपाध्याय का कार्य करते रहे और फिर आपको आचार्य बनाया गया। उसके पश्चात् आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक बन गये। आपको नाम की इच्छा न थी। आप कई वर्ष तक वैदिक मैगज़ीन (अंग्रेजी मासिक) का सम्पादन करते रहे और सम्पादक के स्थान पर नाम आचार्य रामदेवजी का ही होता था।

वे सिद्धहस्त लेखक थे—आपने आर्यसमाज में अनेक पुस्तकें अनेक भाषाओं में लिखीं। आपने अंग्रेजी में ऋषि दयानन्द के जीवन तथा दस नियमों पर पुस्तकें लिखी थीं। आपने आर्यभाषा तथा उर्दू में अनेक छोटी तथा बड़ी पुस्तकें लिखीं। अन्ततः सत्यार्थप्रकाश का उर्दू में अनुवाद लिख रहे थे तभी आपने भौतिक शरीर छोड़ा। आप केवल दश समुल्लास ही अनूदित कर पाये थे।

उनका हास्य रस—आप हँसमुख भी थे। एक बार आपसे किसी ने कहा आपने अपना नाम चमूपति स्त्रियों-जैसा रख लिया। आपने उत्तर दिया, "हमारे तो पति पुरुष ही होते हैं। आपके पति स्त्रियाँ होती होंगी, इसलिए आपको ऐसा भान होता है।"

एक मुसलमान भाई का कथन—आर्यसमाज को आपकी योग्यता पर अभिमान था। आप सिद्धहस्त लेखक थे। मिर्जाइयों ने एक पुस्तक लिखी। आपने उसका उत्तर (उसमें किये गये) प्रश्नों से न्यून पृष्ठों पर दिया। एक मुसलमान सज्जन ने दोनों पुस्तकों को

---

१. दयानन्द सेवा-सदन के सदस्य बनकर आपने सभा की सेवा की प्रतिज्ञा की थी। इस सदन के सदस्य के रूप में उनको स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी ने दीक्षा दी थी। स्वामी स्वतन्त्रानन्द कितने ऊँचे विरक्त संन्यासी थे, यह लेख उसी का एक प्रमाण है। पं० चमूपति-जैसे मनीषी को दीक्षा देने की घटना की आपने चर्चा तक नहीं की। ऐसा अहङ्कार-शून्य साधु मिलना अति कठिन है।

देखा और कहा मैं समझता था पण्डितजी ने कई प्रश्न छोड़ दिये होंगे, परन्तु देखने पर विदित हुआ कि कोई प्रश्न नहीं छोड़ा है और उत्तर की पृष्ठ संख्या भी न्यून है, अतः पण्डितजी उत्तम लेखक हैं।

सकल संशय-निवारक—एक मुसलमान ने 'जवाहिर जावेद' को पढ़ा और कहा था मैंने जीव, प्रकृति पर अनेक बार प्रश्न किये, परन्तु सन्तोष न हुआ, पण्डितजी की इस पुस्तक को पढ़कर मेरे सब संशय निवृत्त हो गये।

आह! वे जवानी में ही चल बसे—यह दुःख की बात है कि पण्डितजी युवावस्था में असमय ही स्वर्ग सिधार गये।[1]

निर्भय वीर चौधरी पीरूसिंहजी

चौधरी पीरूसिंहजी ग्राम मटिण्डू, जिला रोहतक के रहनेवाले थे और अपने समय में जिला रोहतक के आर्यसमाजों और जाटों के नेताओं में से एक थे। आपके पुरुषार्थ से जिले के अतिरिक्त हरियाणा प्रान्त में आर्यसमाज का प्रचार हुआ। आप सर्वगुण-सम्पन्न आर्यसमाजी थे। आप आर्यसमाज के सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। किसी समय पं० बस्तीरामजी प्रसिद्ध भजनीक ने कहा था कि मैं नया भजन बनाकर जब तक चौधरी पीरूसिंह को सुनाकर स्वीकृति न लेता था तब तक भजन न गाता था। भक्त फूलसिंह ने कहा, मेरे गुरु चौधरी पीरूसिंहजी थे। आप उपदेशक थे, भजनीक थे, शास्त्रार्थी थे। एक बार एक विवाह में आप सम्मिलित हुए। उस दिन सायंकाल तक पण्डितजी नहीं आये तो घरवालों ने कहा चौधरीजी पण्डित नहीं आया क्या किया जाए?

'मैं ही पण्डित हूँ'—आपने कहा पण्डितजी आ गये हैं। वे निश्चिन्त हो गये। जब संस्कार का समय आया उन्होंने कहा चौधरीजी पण्डितजी कहाँ हैं? आपने कहा, मैं ही पण्डित हूँ और स्वयं ही संस्कार करवा दिया।

भजनीक तथा गुरुकुल के संस्थापक—इसी प्रकार एक उत्सव पर भजनीक न था तो आप ही ने भजन गाये। आपके उद्यम

---

१. स्वामीजी के इस लेख की खोज में मैंने कितना श्रम किया है और कितने वर्ष लगाये हैं यह सर्वज्ञ प्रभु जानते हैं या मैं जानता हूँ। प्रभु का धन्यवाद मेरी कामना पूरी हो गई और यह महत्त्वपूर्ण लेख मिल गया। एक बार मिलकर फिर खो गया, पुनः भारी श्रम करना पड़ा। पण्डितजी व पूज्य स्वामीजी के प्रति श्रद्धा का मूल्य चुकाने का मुझे बड़ा सन्तोष है।

से गुरुकुल मटिण्डू बना। जिला रोहतक में यह पहला गुरुकुल था। दूसरे गुरुकुल बाद में बने हैं।

जन्मजात जननायक—आप पंचायत का निर्णय लेने में सिद्धहस्त थे। एक बार इनके विरुद्ध एक पंचायत बुलाई गई। यह भी अपने दलसहित उपस्थित हुए और जब बातचीत होने लगी तो आपने अपनी पटुता से उसी पंचायत को अपने पक्ष में करके उस व्यक्ति के विरुद्ध उसी पंचायत से निर्णय लिया, जिसने यह पंचायत चौधरी पीरूसिंह के विरुद्ध बुलाई थी।

शुद्धि-आन्दोलन के सच्चे नेता—हरियाणा प्रान्त आर्यसमाज का गढ है, परन्तु यहाँ पर मूले जाटों की शुद्धि जैसी चाहिए थी वैसी नहीं हुई, परन्तु चौधरीजी ने केहरीसिंह को शुद्ध किया और अपनी भतीजी का सम्बन्ध उससे किया, तब आर्यसमाजी इस सम्बन्ध का विरोध करते थे। आपने किसी की भी परवाह न की।

थानेदार की धमकी का क्या उत्तर दिया—खरखोदा आर्यसमाज का जब नगरकीर्तन बन्द हुआ तो थानेदार खरखोदा आया और पंचायत बुलाई ताकि निर्णय किया जाए। थानेदार कहता था कि कीर्तन न निकालकर उत्सव किया जाए। चौधरी पीरूसिंहजी कहते थे उत्सव नगरकीर्तन-सहित ही होना चाहिए। तब थानेदार ने कहा आप यहाँ मुलतान बनाना चाहते हैं? कुछ समय पूर्व ही तो मुलतान में दंगा हुआ था, जिसमें अनेक दुकानें लूटी गई थीं। तब झट से चौधरी पीरूसिंह ने उत्तर दिया, "थानेदारजी यह स्मरण रहे यदि यहाँ झगड़ा हुआ तो उलटी मुलतान बनेगी।"

मैं आर्यसमाजी हूँ—इसपर थानेदार बिगड़ गये और कहने लगे आप कौन हैं? उत्तर दिया, "मैं आर्यसमाजी हूँ।" फिर पूछा, "आप नम्बरदार हैं, जैलदार हैं, क्या हैं?"

उत्तर दिया, 'मैं कह चुका हूँ कि मैं आर्यसमाजी हूँ।"

जब चौधरी पीरूसिंह चल पड़े—थानेदार ने कहा, "आप चले जाएँ।" आप अपना दण्ड सँभालकर चल दिये। साथ ही साथ चौधरी जुगलाल आदि भी चल पड़े। थानेदारजी ने कहा, "ज़ैलदारजी आप बैठें।"

चौधरी जुगलालजी ने कहा, "मैं तो लोगों का ज़ैलदार हूँ और चौधरी पीरूसिंह मेरा भी ज़ैलदार है। जो यह कहेगा वही होगा। जब यह यहाँ नहीं तो मैं भी नहीं।"

निर्भय वीर चौधरी जुगलालजी फ़रमाणा

चौधरी जुगलालजी ग्राम फ़रमाणा, जिला रोहतक के निवासी थे। चौधरी छोटूरामजी, मन्त्री पंजाब राज्य और चौधरी लालचन्दजी इस समय हरियाणा प्रान्त के नेता हैं। वे इनके पथ-प्रदर्शक थे। चौधरीजी आर्यसमाज के मुख्य कार्यकर्त्ताओं में से एक थे, जिन्होंने जिला रोहतक में आर्यसमाज का काम किया है। जिस समय पं० ब्रह्मानन्दजी (वर्तमान स्वामी ब्रह्मानन्दजी) वहाँ प्रचार करते थे चौधरीजी उनके सहायक थे। चौधरी पीरूसिंहजी, चौधरी जुगलालजी, चौधरी अमरसिंहजी आदि दहिया दल के कार्यकर्त्ताओं में से थे।

जब अंग्रेज को आँख दिखाई—चौधरी जुगलालजी ज़ैलदार थे। एक समय डिप्टी कमिश्नर ने बुलाकर कहा, ''चौधरीजी आप ज़ैलदार तभी रह सकते हैं, यदि जनेऊ उतार दें।'' ध्यान रहे उस समय जाटों ने नये-नये यज्ञोपवीत पहने थे। चौधरीजी ने कहा यह जनेऊ उतारने का शब्द एक बार तो कह दिया यदि दूसरी बार कहा तो कुछ और हो जाएगा। अब सोचकर कहना। साहिब बहादुर चुप हो गये और चौधरीजी ज़ैलदार भी रहे।

वे बिन बुलाये अफ़सरों के पास नहीं जाते थे—आप प्रायः अफ़सरों से मिलने कम जाते थे या नहीं जाते थे। एक नया डिप्टी कमिश्नर आया। ये मिलने नहीं गये। एक बार भेंट होने पर साहिब ने कहा, ''ज़ैलदार साहिब! आप पहले नहीं मिले?'' उत्तर दिया, ''मेरे पास आपके चपरासियों को देने के लिए धन नहीं है। साहिब ने पूछा उनको क्यों देता है? उत्तर दिया ताकि वे आपको जाकर कहें कि चौधरी जुगलाल आपसे मिलने आये हैं। साहिब ने कहा, ''आप जब आया करें सीधा मेरे पास आ जाया करें। आपको रुकावट न होगी।''

गवर्नर को क्या कहा?—एक बार पंजाब के गवर्नर ओडायर साहिब रोहतक गये। ज़िले के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से जो भेंट हुई उनमें आप भी एक थे। दैवयोग से आपसे लाट साहिब ने प्रश्न किया, ''आपके जिले में ख़ून क्यों अधिक होते हैं?'' आपने उत्तर दिया, ''सरकार की दया से ख़ून होते हैं।''

लाट साहिब ने कहा, ''यह कैसे?' उत्तर दिया किसी विवाद में हम न्यायालय की शरण लेते हैं तो हमें वहाँ से सन्तोष नहीं होता तब बदला लेने की भावना उत्पन्न हो जाती है।

आर्यसमाज खरखोदा का नगरकीर्तन बन्द कर दिया गया। आप पंचायत में सम्मिलित होकर दीवान टेकचन्दजी के पास गये। दीवान टेकचन्दजी कमिश्नर थे। आपने सबको, अर्थात् आर्यों और मुसलमानों को सोनीपत बुलाया। जब दोनों दल मिले तो दीवानजी ने कहा, चौधरीजी आप मिलकर निर्णय करलें, झगड़े में लाभ न होगा। चौधरीजी ने कहा, "इनका हमारा तो विवाद ही नहीं है। रोहतक जिला में जो डिप्टी कमिश्नर, पुलिस अफसर थानेदार मुसलमान हैं वे इनको उत्तेजित करते हैं। तब ये 'न' कहते हैं, अन्यथा हमारा नगरकीर्तन रोकनेवाला कौन है? हमारा अधिकार है, हम निकालेंगे।"

दीनबन्धु स्वामी श्रीयुत अनुभूतानन्द[१]

आर्यसमाज के संन्यासियों में कई श्रेणियाँ हैं। एक श्रेणी में वे संन्यासी परिगणित होते हैं, जो स्थान-स्थान में भ्रमण करते और प्रचार करते हैं। दूसरे ऐसे संन्यासी हैं जो अधिकतर एक स्थान पर रहते हैं और कथावार्ता, पठन-पाठन या लिखने का कार्य करते हैं। तीसरे ऐसे हैं, जो न व्याख्यान देते हैं, न पढ़ाते हैं, न कथा करते हैं, केवल बातचीत के द्वारा प्रचार करते हैं। स्वामी अनुभवानन्दजी इस तृतीय कोटि के प्रचारक थे। इनका गत आठ अप्रेल १९४१ को[२] आदमपुर द्वाबा में सन्निपात रोग से शरीरान्त हो गया। स्वामीजी के निधन से दलितों, पिछड़ों का एक सच्चा, कर्त्तव्यनिष्ठ हितैषी उठ गया है।

[**विशेष टिप्पणी**—यह लेख स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज लिखित नहीं तथापि इस ग्रन्थ में दिया गया है। इसकी सामग्री स्वामीजी ने ही स्वामी वेदानन्दजी को दी थी। ऐसा लेख के अन्त में लेखक ने स्वयं ही लिखा है। पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज की कार्यशैली ही ऐसी थी। वे कई बार दूसरों को महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए प्रेरित किया करते थे।. आचार्य चमूपतिजी, पं० मनसारामजी 'वैदिक तोप' व स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ को लिखने-लिखाने के कार्य सौंप दिया करते थे। इस लेख पर लेखक का नाम 'सुचरिताचारी' छपा है। इस साहित्यिक नाम से भी स्वामी वेदानन्दजी 'आर्य' मासिक में लिखा करते थे। वही तब 'आर्य' के सम्पादक थे। 'जिज्ञासु']

१. यह लेख 'आर्य' मासिक लाहौर के वैशाख १९९८ वि० के अङ्क में पृष्ठ ५०-५२ पर प्रकाशित हुआ था। आर्य में भूल से नाम अनुभवानन्द छपा है।

२. आर्य में भूल से आठ मार्च को निधन हुआ छपा है।

स्वामीजी स्वयं दलित वर्ग में से थे, अतः उन्हें दलितों की दुरवस्था का पूरा अनुभव था और इसी कारण उन्होंने दलितोद्धार को ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया था। स्वामीजी आर्यसमाज के दलितोद्धार का एक जीता-जागता उदाहरण थे।

स्वामीजी का जन्म मानसा (पटियाला राज्य) में हुआ। जन्म की बिरादरी से चूहड़े थे। इनका पहला नाम श्री ठाकुरसिंह था। इनके एक चाचा जलालाणा (हिसार ज़िला) में रहते थे। वहाँ यह कभी-कभी उनसे मिलने जाते थे। वहीं इनकी श्री मुंशी कृष्णचन्द्र (भूतपूर्व मुंशी कालेखाँ) से भेंट हुई।[1] मुंशीजी ने इन्हें विद्याध्ययन की प्रेरणा की। दलित वर्ग में जन्मने के कारण कुछ उत्साहहीन और क्षीण स्वर में वे बोले—"मुंशीजी! मुझे कौन पढ़ाएगा?"

मुंशीजी ने इनका उत्साह बढ़ाते हुए कहा, "आप पढ़ने का निश्चय कीजिए, मैं आपको पढ़ाऊँगा।' मुंशीजी ने इनको कुछ भाषा पढ़ाई और फिर इनके पढ़ने का प्रबन्ध कर दिया। वहीं इन्होंने लघुकौमुदी का आरम्भ किया। स्वामीजी जब तक पढ़ते रहे, मुंशीजी निरन्तर इनकी आर्थिक सहायता करते रहे। स्वामीजी बहुत ऊँची कोटि के तितिक्षु थे। इन पंक्तियों के लेखक के पास भी स्वामीजी पढ़ने के लिए आये थे। उस समय स्वामीजी वस्त्र नहीं पहनते थे। टाट की कौपीन और टाट का अंगोच्छा रखते थे। स्वामीजी ने सिरसा, फगवाड़ा, जगराँवाँ, लाहौर और दातारपुर में शिक्षा प्राप्त की।

गुरुशुश्रूषा की भावना इनमें उत्कर्ष को पहुँची हुई थी। जब ये जगराँवाँ में पढ़ते थे तो अपनी सेवा के द्वारा गुरुजनों को अपने वश में कर रखा था। एक दिन एकान्त में इन्होंने अपने अध्यापक से कहा, "पण्डितजी मैं तो अछूत हूँ।" पण्डितजी ने उदारतापूर्वक कहा—"कोई बात नहीं, किन्तु आप तनिक सावधान रहें और अपनी जन्मगत जाति का परिचय किसी को न दें।"

कुछ काल के पश्चात् स्वामीजी वहाँ से दातारपुर (होशियारपुर) में चले गये। वहाँ वैरगियों का एक मन्दिर है, उस मन्दिर में एक संस्कृत पाठशाला थी। स्वामीजी उसमें पढ़ने लगे। दातारपुर में आर्यसमाज का विरोध अधिक था। वहाँ के लोग वहाँ आर्यसमाज

---

१. महाशय कृष्णचन्द्र स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी के एक वीर शिष्य थे। अध्यापक थे। बड़े पवित्र आत्मा, प्रभुभक्त व ऊँचे आर्योपदेशक थे। आपने समाज को कई सपूत दिये।

के व्याख्यान आदि नहीं होने देते थे। यह विरोध-भावना पाठशाला के विद्यार्थियों में भी थी। आर्यसमाज के सम्बन्ध में इनका विद्यार्थियों से प्रायः विवाद चला करता था। एक बार उस पाठशाला के एक अध्यापक ने कहा—''आर्यसामाजियों ने बहुत बल लगाया, किन्तु यहाँ समाज बनाने में सफल नहीं हो सके और न कभी होंगे।''

स्वामीजी ने इसके उत्तर में कहा—''पण्डितजी! किसी आर्य ने इस कार्य के लिए निश्चय न किया होगा। आर्य एक बार किसी कार्य के लिए निश्चय कर ले तो फिर वह कार्य हुए बिना रह नहीं सकता। कोई बड़े-से-बड़ा विघ्न भी आर्य के निश्चय में बाधक नहीं हो सकता। पण्डितजी महाराज! जिस दिन किसी आर्य ने निश्चय कर लिया, उस दिन यहाँ समाज-मन्दिर तथा समाज दोनों आपको बने मिलेंगे।

पण्डित महोदय ने हँसकर प्रत्युत्तर में कहा—''अच्छा कोई निश्चयवाला खोज लीजिए।'' स्वामी अनुभवानन्दजी ने गम्भीर मुद्रा धारण करके कहा, ''किसी अन्य को क्या ढूँढना? मैं ही निश्चय करता हूँ।'' इतना कहकर स्वामीजी ने पाठशाला छोड़ दी। पाठशाला त्यागने के साथ उनके विद्याध्ययन की भी समाप्ति हो गई।

दातारपुर के पास एक बरसाती खड्ड है। हमारे चरितनायक ने पाठशाला छोड़कर खड्ड के किनारे पत्थरों पर अपना आसन जा जमाया। शीत, आतप, वर्षा की चिन्ता न करके अपना आसन अडोल रखा। भिक्षा अथवा शौच आदि आवश्यक शारीरिक कृत्यों के लिए आसन से हिलते, अन्यथा दिन-रात वहाँ बैठे रहते। कोई उनके पास आ जाता तो उससे बातचीत कर लेते, अन्यथा मौन रहते। उनकी इस उग्र तपस्या से एक राजपूत अभिभूत हुआ और इनकी सेवा में उपस्थित होकर उसने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, ''स्वामीजी! कोई सेवा बताइए।''

स्वामीजी ने कहा, ''भाई! हमें अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। हम यहाँ समाज-मन्दिर बनाना चाहते हैं, ताकि नियम से वेद-प्रचार हो सके। उसके लिए हमें थोड़ी-सी भूमि चाहिए।'' उस भक्त राजपूत ने भूमि देने का वचन दिया। समय पर उसने उपयुक्त भूमि स्वामीजी को अर्पण की। स्वामीजी महाराज की प्रेरणा से उस भूमि की रजिस्ट्री सभा के नाम कराई गई। स्वामीजी ने भूमि की रजिस्ट्री आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम करवाने के पश्चात् मन्दिर-निर्माण के लिए भिक्षा आरम्भ

की और मन्दिर तथा कुआँ बनवा दिया।

इस कार्य से निपटकर स्वामीजी भ्रमण के लिए निकल पड़े। उस समय उनके चित्त में दलित बालकों की शिक्षा की भावना जागी और स्वामीजी उस भावना को मूर्तरूप देने लिए जी-जान से उसमें जुट गये। मरने से कुछ दिन पूर्व उन्होंने बताया कि उन्होंने पचास हज़ार रुपये भिक्षा से इकट्ठे करके दलितों की शिक्षा पर लगाये। स्वामीजी दलितों की शिक्षा के लिए किसी संस्था-स्थापन के बखेड़े में न उलझे। उन्होंने जिसकी जैसी अभिरुचि देखी, उसके लिए तदनुरूप संस्था में प्रबन्ध करा दिया। उनके इस पुनीत उद्योग के परिणामस्वरूप कई दलित बी०ए० बने, वैद्य बने हुए हैं। कइयों को संस्कृत की शिक्षा दिलाकर उन्होंने उपदेशक बना दिया। स्वामीजी ने उन बालकों की विद्या की ही चिन्ता नहीं की, वरन् विद्याध्ययन के पश्चात् उनकी आजीविका के साधन जुटाने का भी प्रयत्न किया।

स्वामीजी भ्रमण करते-करते एक बार गढ़दीवाला (जिला होशियारपुर) आ निकले। वहाँ एक भद्र पुरुष से पूछा, ''क्या यहाँ आर्यसमाज है? स्वामीजी के इस प्रश्न के उत्तर में उस भले मानुष के मुख से गालियों का स्रोत फूट निकला। स्वामीजी को गालियाँ, समाज को गालियाँ। गालियाँ सुनकर भी स्वामीजी उत्तेजित न हुए, प्रत्युत वहाँ कुछ काल रहने का निश्चय किया। वहाँ रहने की व्यवस्था करके स्वामीजी ने गीता की कथा आरम्भ की। कथा कई मास चलती रही। कथा का प्रभाव बहुत उत्तम रहा। कई सज्जन वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये। स्वामीजी ने धन-संग्रह करके भूमि खरीदी। लाला देवीचन्दजी ने कहा—''स्वामीजी! आप महात्मा दल की ही सहायता करते हैं, हमारी भी किया कीजिए।'' स्वामीजी ने गढदीवाला की भूमि कॉलेज पक्ष के नाम करा दी। उन्हीं दिनों स्वामीजी आदमपुर द्वाबा पधारे। वहाँ समाज-मन्दिर के निमित्त भूमि तो थी, उसमें कूप भी था, किन्तु मन्दिर न था। स्वामीजी ने पुरुषार्थ करके वहाँ का मन्दिर बनवा दिया। इस कार्य में उनको उनके शिष्य श्री स्वामी विमलानन्दजी ने प्रभूत सहायता की।

स्वामीजी के शरीर का वर्ण अत्यन्त काला था, किन्तु हृदय अत्यन्त धवल था। दलितों के लिए उनके हृदय में अपार करुणा विराजती थी। स्वामीजी ने सारी आयु कहीं व्याख्यान नहीं दिया,

१. गीता की उपर्युक्त कथा भी वार्तालाप या शास्त्र-चर्चा के रूप में ही थी।

न कहीं कोई शास्त्रार्थ ही किया। केवल लोगों से मिल-जुलकर बातचीत के द्वारा उन्होंने कार्य किया। इस प्रकार मूकभाव से कार्य करते हुए स्वामीजी ने सहस्रों की सम्पत्ति समाज के लिए प्राप्त की और अनेक विद्यार्थियों को विद्या से विभूषित किया। वे स्वभाव के शान्त, निरभिमानी, किन्तु अपने सङ्कल्प के धनी थे।

[हमें स्वामीजी के देहान्त का समाचार बहुत देर पश्चात् ज्ञात हुआ। इस लेख के लिए सामग्री श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी ने दी है। तदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं। —लेखक][1]

पं० गणपतिजी शर्मा

पण्डितजी का जन्म-स्थान बीकानेर राज्य में चुरू था। पण्डितजी ने बाल्यकाल में संस्कृत का अध्ययन किया। आप व्याकरण, दर्शन के प्रौढ़ विद्वान् थे। पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक हो गये। आपकी स्मरण शक्ति उत्तम थी, अतः पढ़े ग्रन्थों में से पाठ स्मरण रह जाते थे। मुझे एक बार एक वैद्यजी ने बतलाया कि वे पण्डित गणपतिजी शर्मा से डलहौज़ी मिले। वहाँ उनको पण्डितजी ने संस्कृत के वैद्य-विषयक अनेक श्लोक सुनाये जिनका भाव था—वैद्य कैसा हो, रोगी के समीप कैसे जाए, रोगी से कैसे बात करे इत्यादि।

उन्हें सुनने के लिए—पण्डितजी उत्तम वक्ता थे। उनके व्याख्यान सुनने के लिए जनता उत्साह से आती थी। पण्डितजी प्रायः शास्त्रीय विषयों पर ही बोला करते थे। ईश्वर की सिद्धि पर आप अनेक व्याख्यान दिया करते थे।

शास्त्रार्थ करते समय—पं० गणपतिजी शर्मा शास्त्रार्थ करने में अत्यन्त पटु थे। मैंने उनके चार-पाँच शास्त्रार्थ सुने हैं। शास्त्रार्थ करते समय उनका यह नियम था कि शास्त्रार्थ के समय उनको कोई

---

१. पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी ने ऐसे कई साधुओं का निर्माण किया जो व्याख्यान नहीं देते थे। लेख भी नहीं लिखते थे। पढ़ाते भी नहीं थे। केवल वार्तालाप व सत्संग से लोगों का जीवन बदलते रहे। ऐसे साधुओं को वे 'मौनी प्रचारक' की संज्ञा दिया करते थे। स्वामी अनुभूतानन्दजी उनमें से एक थे। स्वामी ईशानन्दजी भी उनके एक ऐसे ही कर्मठ शिष्य थे। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज का स्वामी अनुभूतानन्दजी के जीवन पर अपना लिखा लेख भी हमें मिल गया है। वह भी अन्यत्र इस पुस्तक में दिया जा रहा है। **'जिज्ञासु'**

किसी प्रकार की सम्मति न दे और न ही कुछ सुझाने की इच्छा करे, क्योंकि इससे उनका काम बिगड़ता था।

उनकी विलक्षण स्मृति व ज्ञान—लुधियाना में एक बार शास्त्रार्थ था। पण्डितजी ने सनातनधर्मी पण्डित से कहा था पण्डित जी मेरा और आपका पहले भी शास्त्रार्थ हुआ है। आज मैं एक बात कहना चाहता हूँ, यदि आप सहमत हों तो वैसा किया जाए। उस पण्डित के पूछने पर आपने कहा अब तक आर्यसमाजी पुस्तकों में और महर्षि दयानन्दजी से लेकर अब तक आर्यसमाजी पण्डितों ने इस विषय पर जो प्रमाण दिये हैं मैं उनमें से कोई भी प्रमाण न दूँगा और इस विषय पर सनातनधर्मी पण्डितों ने जो पुस्तकें लिखी हैं उनमें जो प्रमाण दिये हैं आप उनमें से कोई भी प्रमाण न दें। इसी प्रकार यदि आप चाहें तो जो प्रमाण आप कभी शास्त्रार्थ में दे चुके हैं और जो प्रमाण मैं दे चुका हूँ, वे भी छोड़ दें। अब सब प्रमाण नये हों। सनातनी पण्डित ने यह नियम स्वीकार न किया। इससे आपकी योग्यता और स्मरण-शक्ति का पूरा-पूरा परिचय मिलता है।

श्रीनगर-शास्त्रार्थ जैसा स्वामीजी ने सुना—आप एक बार श्रीनगर (काश्मीर) गये हुए थे। वहाँ एक शास्त्रार्थ हो गया। शास्त्रार्थ दर्शनविषय पर एक अंग्रेज पादरी[१] और सनातनधर्मी पण्डित में था। आप उसमें दर्शक व श्रोता थे। पादरी साहब का पूर्वपक्ष था। महाराजा जम्मू-काश्मीर प्रतापसिंहजी अध्यक्ष थे। तीसरी-चौथी बारी में सिद्ध हो गया कि पण्डित लोग अपना पक्ष सिद्ध करने में असमर्थ हैं और पादरी साहब अपने पक्ष में अच्छे हैं।

यह देखकर पण्डितजी से रहा न गया। आप खड़े हुए और महाराजा से कहा यदि आपकी इच्छा हो तो मैं बोलना चाहता हूँ और पण्डितों के पक्ष को सिद्ध करना चाहता हूँ। महाराजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। आप बोलें। पादरीजी ने उसपर कुछ कहा, आपने उत्तर दिया। अगली बारी में पादरी का पक्ष शिथिल प्रतीत होने लगा तब राजा और श्रोता प्रसन्न होने लगे।

वैदिक धर्मानुरागी-महान् त्यागी—आपने फिर कहा, तब पादरी साहब ने आपसे पूछा—आप कौन हैं? आपने उत्तर दिया—

---

१. पादरी का नाम जानसन था। कुछ स्रोत यह बताते हैं कि पण्डितजी शास्त्रार्थ में उपस्थित नहीं थे, कहीं श्रीनगर में ठहरे थे। उन्हें विनती करके लाया गया कि राज्य को पराजय से बचाएँ।

ब्राह्मण। पादरीजी ने कहा मेरा भाव है आप आर्यसमाजी हैं वा सनातनी हैं। आपने कहा इस शास्त्रार्थ में इस प्रश्न का क्या काम? पादरी ने कहा मैं जानना चाहता हूँ यदि आप आर्यसमाजी हैं तो मैं आपसे शास्त्रार्थ नहीं करूँगा। पण्डितजी ने पादरी के बल देने पर कहा कि यह सत्य है कि मैं आर्यसमाजी हूँ, परन्तु यह विषय आर्यसमाज और सनातनधर्म का नहीं, इसलिए मुझे बोलने का अधिकार है। तब पादरी साहब ने इनसे अपनी हार स्वीकार की और महाराजा तथा जनता ने पण्डितजी को पुनः काश्मीर आने का सन्देश भेजा, परन्तु पण्डितजी ने उत्तर दिया मैं अभी न आऊँगा। इससे पण्डितजी की योग्यता का जैसा परिचय लगता है वैसे ही पण्डितजी के त्याग का भी ज्ञान होता है।

सहनशील आदर्श धर्मोपदेशक चिरंजीलालजी[१]

आर्यसमाज के आरम्भकाल में एक उपदेशक थे, जिनका शुभ नाम था, श्रीमान् चिरंजीलालजी। ये पंजाबी के भजन बनाकर गाया करते थे। उस समय आर्यजगत् में इनके भजनों की प्रसिद्धि थी और जनता उन्हें चाव से सुनती थी।

लाला मुंशीरामजी (स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी) ने लिखा है कि एक बार वे चिरंजीलाल को साथ लेकर प्रचार के लिए वहाँ गये जहाँ उन्हें व्याख्यान देना था। वहाँ कोई श्रोता ही न आया, तब चिरंजीलाल ने कहा, बाबूजी! आप यहाँ बैठें, मैं कुछ यत्न करके देखता हूँ। वे वहाँ से बाज़ार में गये। एक दुकानदार से एक मूढ़ा माँगकर बाज़ार में रखकर उसपर खड़े होकर अपनी बैतें पढ़ने लगे। तब कुछ लोग सुनने को आ गये। उसके पश्चात् मूढ़ा वहाँ से उठाकर आगे चलकर रख लिया। इसी प्रकार धीरे-धीरे कई शत श्रोताओं को साथ लेकर लाला मुंशीरामजी जहाँ बैठे थे वहाँ आ पहुँचे और सबको सम्बोधन करके कहा, अब आप इनकी बात सुनें। इस प्रकार के वे उत्साही और प्रभावशाली वक्ता थे।

उन्होंने मद्य के निषेध में भी पंजाबी में छन्द लिखे थे। जिसे शराब की सिठ कहते थे। उसके ध्रुव इस प्रकार थे—

१. द्रष्टव्य—'वेद-पथ' मासिक आश्विन २००६ विक्रमी पृष्ठ ९७-९८।

भन्न बोतल तोड़ प्याले नूँ। लख लानत पीवन वाले नूँ॥

वे एक दिन बाज़ार में खड़े होकर अपने छन्द गा रहे थे, जिनमें मद्यपान का खण्डन था। एक मद्यप आया। उसने चिरंजीलाल के मुख पर थूक दिया। उन्होंने जेब से रुमाल निकालकर मुख पूँछ कर कहा, आप क्या करेंगे? आपको ध्यान होना चाहिए, मैं जन्म से ही चोपड़ा हूँ। इसलिए मेरा इन बातों से कुछ नहीं बिगड़ता है।

भाव यह था—जिस रोटी को घृत लगा हुआ हो, उसे पंजाबी में चोपड़ी हुई कहते हैं और पुल्लिंग में वह चोपड़ा हो जाता है और पंजाबी क्षत्रियों की एक बिरादरी भी चोपड़ा है। चिरंजीलालजी चोपड़ा बिरादरी के थे। चोपड़े भोजन पर बाहर का प्रभाव कम होता है। यही चिरंजीलालजी ने व्यंग्य से उत्तर दिया था।

उपदेशकों को अपना स्वभाव शांत बनाने का यत्न करना चाहिए और ऋषि दयानन्दजी के चरणों पर चलने का उद्योग करना चाहिए। चिरंजीलालजी-जैसे उपदेशकों के जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। और अपने जीवन को सहनशील बनाने का परिश्रम करना चाहिए।

डॉ० चिरञ्जीवजी भारद्वाज[१]

आपके पिता ग्राम चौरासी, ज़िला जालन्धर के रहनेवाले थे, और अध्यापक कार्य पर श्री गोबिन्दपुर, जिला गुरदासपुर में दीर्घकाल तक काम करना पड़ा। इसलिए डॉक्टरजी की आयु का प्रथम भाग गोबिन्दपुर में व्यतीत हुआ।

आप जब कॉलेज में पढ़ने के लिए लाहौर आये तो आर्यसमाज में व्याख्यान सुनने गये। महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी का व्याख्यान था। डॉक्टरजी कहा करते थे कि उस व्याख्यान में मैं कुछ भी न समझा, क्योंकि महामहोपाध्यायजी हिन्दी बोलते थे और डॉक्टरजी

विशेष टिप्पणी—वीर चिरंजीलाल का जन्म राहों, ज़िला जालन्धर में हुआ था। १९ वर्ष की आयु में लुधियाना में ऋषि-दर्शन किये। उनके उपदेश सुनकर जीवन ही पलट गया। वैदिक धर्म-प्रचार, दीन, दुःखी, दलित, गौ, विधवा व स्त्रीजाति के लिए बहुत यातनाएँ सहीं। कारागार में भी अमानवीय यातनाओं का शिकार हुए। उनके जीवन-चरित में मैंने उनकी हृदय स्पर्शी प्रेरणाप्रद अनेक घटनाएँ दी हैं। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपनी आत्मकथा में इनकी चर्चा की है। —'जिज्ञासु'

१. श्री स्वामीजी का यह लेख सार्वदेशिक मासिक के अंक में प्रकाशित हुआ था।

उस समय हिन्दी न जानते थे।

उसके पीछे डॉक्टरजी ने अष्टाध्यायी पढ़नी आरम्भ की और उसके अच्छे ज्ञाता बने।

लाहौर में डॉक्टरी पढ़कर आप बड़ौदा में डॉक्टरी कार्य पर नियुक्त हुए और आपको प्लेग ड्यूटी पर लगाया गया। उस समय वहाँ यह प्रथा थी कि ढेड़ (अछूत) जब रेल से उतरते तो फाटक पर आकर खड़े रहते जब लोग टिकट देकर चले जाते तो ये बाबू को अपना टिकट दिखाकर उसे भूमि पर रख देते और बाहर निकल जाते। डॉक्टरजी ने जब उनको छूकर देखना आरम्भ किया तो हल्ला मच गया कि डॉक्टरजी ढेड़ों को छूते हैं। इसपर डॉक्टरजी अड़ गये और कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा और दलितोद्धार का काम आरम्भ किया गया। जनगणना का समय आया। वे लोग अपने-आपको आर्य लिखवाते थे, परन्तु जनगणना के लेखक देवता न लिखते थे और जब बल दिया गया तो उन्होंने आर्य (ढेड़) लिखना आरम्भ किया तब न्यायालय में अभियोग चलाया गया वहाँ वह यही कहते थे कि यह ढेड़ हैं इसलिए हम लिखते हैं। डॉक्टरजी का पक्ष था यदि यह ईसाई हो जाएँ वा मुहम्मदी हो जाएँ तो आप ईसाई (ढेड़) वा मुसलमान (ढेड़) लिखेंगें वा नहीं? वे कहते थे तब तो ईसाई, मुसलमान ही लिखेंगे, तब डॉक्टरजी ने कहा अब भी आर्य ही लिखा जाए। ढेड़ शब्द उड़ा दिया जाए। वहाँ से आप नौकरी छोड़कर इंगलैण्ड गये। वहाँ डाक्टरी पढ़ते समय आपने सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इंगलैण्ड से लौटकर आप पंजाब में आकर लाहौर में काम करने लगे। उस समय में आप आर्यप्रतिनिधि सभा के मन्त्री भी बनें। हिन्दी में पत्र-व्यवहार और कार्यालय का काम तथा बोधोत्सव, निर्वाणोत्सवादि नाम, ये उनके समय के ही काम हैं।

लाहौर से आप रंगून चले गये। वहाँ पर भी मणिलालजी कोठारी की प्रेरणा से मारिशस द्वीप में गये। जिस समय आप वहाँ गये और डॉक्टरी का कार्यारम्भ किया तो आपकी आया १५०-३०० मासिक थी। आपने आर्यसमाज-मन्दिर में जाना आरम्भ किया। उस समय पोर्टलुईस में केवल नाममात्र का समाज था, आप उसमें जाने लगे और उपदेश देने लगे। तब वहाँ के लोगों ने इनसे कहा आप ऐसा न करें। आपने उत्तर दिया कि जब सब लोग अपने मन्दिरों में जाते हैं तो आप मुझे क्यों रोकते हैं। उसके पीछे इनकी सेवा में उनकी

पंचायत आई और कहा आप आर्यसमाज-मन्दिर में न जाएँ आपने ऊपर लिखित ही उत्तर दिया। तब उन्होंने कहा अच्छा आप जाएँ, परन्तु वहाँ जाकर उपदेश न दें। आपने यह भी न माना तब वहाँ डॉक्टरजी का बहिष्कार किया गया और पूर्णरूप से बहिष्कार हुआ और इनकी दूकान पर पहरा भी लगाया गया, जिसका परिणाम हुआ कि आपका डॉक्टरी काम चौपट हो गया। तब आपने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सुमंगलीजी को साथ लेकर प्रचार कार्यारम्भ किया। आप द्वीप में आर्यसमाज का प्रचार करते थे और अपने मकान पर युवकों को पढ़ाते थे तथा सुमंगलीजी कन्याओं को पढ़ाती थी। इस प्रकार आपने सारा समय प्रचार में लगाकर मारिशस में ३० आर्यसमाजें और परोपकारिणी सभा बनाई।

आप जब लाहौर में काम करते थे उस समय रविवार को प्रातःकाल दुकान पर नहीं जाते थे। आर्यसमाज के सत्सङ्गों में आया करते थे।

ऊपर लिखित घटनाओं से आपका आर्यसमाज के साथ जो प्रेम था, उसका पूरा-पूरा पता मिल जाता है, जिससे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

मारीशस में डॉ० चिरञ्जीवजी भारद्वाज[१]

डॉ० श्री चिरञ्जीवजी ने (मारीशस) आकर पोर्टलुइस में अपना कार्य आरम्भ कर दिया। ये पहले भारतीय डॉक्टर थे और अपने कार्य में कुशल थे। इंगलैण्ड में चार वर्ष पढ़े थे और F.R.C.S., M.R.C.P., D.P.H. की उपाधियाँ इनके पास थी, अतः उनकी डॉक्टरी खूब चली। ये जहाँ डॉक्टरी करके जनता के रोग दूर करते थे, वहाँ उन्होंने साथ-साथ आत्म-चिकित्सा भी आरम्भ की, अर्थात् उन्होंने आर्यसमाज का कार्य आरम्भ कर दिया। आर्यसमाजी होने के नाते आर्यसमाज की उन्नति करना उनका धर्म भी था। ये रंगून से मारीशस आये ही आर्यसमाज के काम के लिए थे।

ब्राह्मणों की सोच!—ब्राह्मणों के लिए तो ये भाले के सदृश थे। उन्होंने उनसे कहा डॉक्टरी ही करें, परन्तु समाज में न जाया करें। उन्होंने उत्तर दिया कि जब मुसलमान मस्जिदों में जाते हैं, ईसाई गिरजे में जाते हैं, तो मैं आर्यसमाजी होने के नाते आर्यसमाज में क्यों न

१. स्वामीजी की विदेश-यात्रावाली पुस्तक से।

जाऊँ? ब्राह्मणों के पास कोई उत्तर न था, अतः उन्होंने दूसरा प्रस्ताव किया कि आप आर्यसमाज में जाएँ तो सही, किन्तु वहाँ खण्डन न करें। उन्होंने पुनः उत्तर दिया कि जिस बात को मैं ठीक समझता हूँ, उसका प्रचार करना मेरा धर्म है। इस प्रकार किसी बात पर समझौता न हुआ।

मैं कायर नहीं—अन्त में ब्राह्मणों ने कहा यदि आप हमारी दोनों बातें नहीं मानते तो हम जाते हैं, किन्तु एक बात और कहते हैं वह यह है कि हम अपने यजमानों में प्रचार करेंगे कि वे आपके पास दवाई लेने न आएँ और हम आपकी दुकान पर धरना भी देंगे। उन्होंने केवल यही उत्तर दिया कि जो पुरुष हज़ारों मील अपने घर से इतनी दूर इस प्रकार के काम करने को आता है, वह सुख भोगने के लिए नहीं आता, और जो धमकी देते हो सो मैं कायर नहीं। मैं केवल एक परमात्मा के अतिरिक्त किसी से भी नहीं डरता हूँ। आपको जो करना हो करें। धर्मप्रचार में जो कष्ट होगा मैं उसे सहर्ष झेलूँगा, अतः आप जो करना चाहें करें। मैं आर्यसमाज में जाऊँगा और प्रचार भी करूँगा।

और विरोधी सफल हुए—इसके पश्चात् ब्राह्मणों ने लोगों को रोका। लोग अनपढ़ थे। प्रत्येक कार्य ब्राह्मणों से पूछकर करते थे। उनको बहकाना सरल था, अतः जो रुक गये सो तो रुक ही गये, किन्तु जो न रुके उन्हें धरने से रोका गया और इस प्रकार डॉक्टरजी की डाक्टरी मन्द हो गई।

ऐसी दशा में यदि कोई अन्य हुआ होता तो उन देवताओं के आगे झुक जाता और उनसे क्षमा-याचना करता, किन्तु डॉक्टरजी उस मिट्टी के बने हुए न थे। वे झुकना नहीं जानते थे। वे तो सिंह के समान सीधा चलनेवाले पुरुष थे। उन्होंने पोर्टलूइस का मकान छोड़कर बकुवा में आकर मकान लिया और अपने को तथा अपने परिवार को आर्यसमाज के अर्पण कर दिया। ये प्रतिदिन सायं को लोगों को हिन्दी पढ़ाते थे और रात्रि को घर से निकलकर व्याख्यान देते थे। उनकी धर्मपत्नी सुमङ्गली देवीजी लड़कियों और स्त्रियों को पढ़ाती थी और अनेक बार बाहर जाकर व्याख्यान भी देती। मारीशस के लिए एक स्त्री का व्याख्यान देना नई बात थी और इसी प्रकार डॉक्टरजी का व्याख्यान देना भी नई बात थी। पहले ब्राह्मण तो कथा किया करते थे। उस समय आर्यसमाज में जहाँ अन्य अनेक व्यक्ति

सम्मिलित हुए, वहाँ पं० जगन्नाथ और पं० राम अवध भी प्रविष्ट हुए, किन्तु ये अधिक समय तक न टिक सके, क्योंकि आर्यसमाज में इतनी आय न थी जितनी ये उस प्रकार कर लेते थे। डॉक्टरजी ने मारीशस में वैदिक धर्म की धूम मचा दी और अनेक आर्यसमाज स्थापित हुए।

मास्टर भानारामजी

स्वर्गीय मास्टर भानारामजी के सम्बन्ध में लाला लब्भूरामजी नय्यड़ ने लेख दिया है। मैं उसी सम्बन्ध में दो बातें लिखना चाहता हूँ।

धैर्य—मास्टरजी के सुपुत्र श्री ब्रजभूषणजी बाल्यावस्था में रोगी थे। रोग बढ़ गया। उस समय एक मित्र ने मास्टरजी से कहा बालक की अवस्था अच्छी प्रतीत नहीं होती, मास्टरजी ने बीच में ही बात काटकर कहा मेरा कर्त्तव्य है रोगी की सेवा करूँ। अच्छा वैद्य जो मिले उसे दिखाऊँ, जो ओषधि वे कहें वह दे दूँ, यदि उसपर भी बालक अच्छा न हो तो ईश्वर की ऐसी ही इच्छा, यह मानकर सन्तोष करूँ और ईश्वर का धन्यवाद करूँ।

मास्टरजी उस समय धैर्य से रहे। ईश्वरकृपा से बालक अच्छा हो गया। मैं ज़िला हिसार में एक ग्राम में कभी-कभी जाया करता था। वहाँ बातचीत में कभी मास्टर भानाराम का नाम भी आया होगा। उस ग्राम के पाँच-छह युवक किसी समय लुधियाना आये। वहाँ उन्होंने कपड़ा क्रय करने की इच्छा की। बाज़ार में दुकानों पर कपड़ा देखने और भाव ठीक करने कई दुकानों पर गये। दाम ऊपर-नीचे करते रहे। देखते-देखते मास्टरजी की दुकान पर भी पहुँच गये। कपड़ा देखने पर दाम पूछा गया। मास्टरजी ने जो दाम बताया वह यत्न करके एक या दो दुकानों पर मिलता था। अन्य दुकानों पर दाम अधिक ही था।

आर्य के दर्शन की चाह—तब एक युवक ने पूछा, ''हम मास्टर भानारामजी से मिलना चाहते हैं, उन्होंने कहा आप उनको कैसे जानते हैं?'' उन्होंने कहा, ''स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी हमारे ग्राम में जाया करते हैं। हमने उनसे सुना है कि लुधियाना में मास्टर भानारामजी की कपड़े की दुकान है।'' तब मास्टरजी ने कहा, वह तो मैं ही हूँ। उन्होंने कपड़ा खरीदा। जब रुपये देने लगे तो उस समय उनके पास पूरे

रुपये न थे, उनका साथी जो स्टेशन पर था, उसके पास थे।

ऐसा विश्वास—उन्होंने कहा, ''ये रुपये ले लें और कपड़ा भी रख लें। हम रुपये लाकर दे देते हैं।'' आपने कहा, ''आप कपड़ा ले-जाएँ, आपने स्वामीजी का नाम लिया है, अतः आप रुपये स्टेशन से लाकर दे दें, परन्तु मैं साढ़े पाँच बजे दुकान बन्द कर दूँगा, उससे पहले दे जाना।''

वे कपड़ा लेकर चले गये। उन्हें कुछ देर हो गई। जब वे आये तो दुकान बन्द पाई। पासवाले दुकानदार चूहड़ियामलजी ने कहा, ''अभी बन्द करके गये हैं।'' वह युवक पीछे दौड़ा, थोड़ी दूर जाकर मास्टरजी से मिले और उनको रुपये दे दिये।

व्यापार में समय बद्धता—इस प्रकार मास्टरजी दुकान समय पर ही खोलते थे और समय पर ही बन्द कर देते थे। वे इस काम में किसी की प्रतीक्षा नहीं करते थे। उनका ईश्वर पर विश्वास और सुख-दुःख में धैर्य से रहना विशेष गुण थे।[१]

भक्त नारायणदासजी

श्री नारायणदासजी तलवण्डी साबोपटियाला राज्य के निवासी थे। आप ग्राम में सम्पन्न वैश्य थे। आप पहले सनातनधर्मी थे। आपके परिवार में पहले आपके छोटे भ्राता वीरूमलजी आर्यसमाजी बने, पशचात् आप भी आर्यसमाजी हो गये। महाशय वीरूमलजी का युवावस्था में ही देहान्त हो गया। उसके पश्चात् भक्त नारायणदासजी दृढ़ आर्य बन गये।

यह लो! परीक्षा की घड़ी आ गई—कई वर्ष पश्चात् आपकी पूज्या माताजी का देहान्त हो गया। उस समय तक लोगों को संशय ही था कि भक्त नारायणदासजी आर्यसमाजी हैं अथवा बातें ही करते हैं, परन्तु माता के देहावसान पर उन्होंने अन्त्येष्टि आर्यसमाज की पद्धति से की तब लोगों ने माना कि भक्तजी आर्यसमाजी ही हैं, परन्तु अभी तक परीक्षा शेष थी। वह थी माता जी की अस्थियाँ संचय करके भक्तजी हरिद्वार भेजते हैं अथवा नहीं।[२]

---

१. यह लेख 'सार्वदेशिक' मासिक दिसम्बर १९४१ के अंक में पृष्ठ ३७४-३७५ पर छपा था।

२. मासिक 'सार्वदेशिक' अक्तूबर सन् १९४१ के अंक में पृष्ठ ३७७-३७८ पर प्रकाशित।

और सब जान गये कि आप क्या हैं—दूसरे दिन ग्रामवासी मिलनेवालों ने भक्तजी से पूछा, "आप अपनी माता के फूल (अस्थियाँ) गंगा भेजेंगे अथवा नहीं? भक्तजी ने उत्तर दिया जब मैं आर्यसमाजी हूँ और माताजी की अन्त्येष्टि में कोई पौराणिक रीति नहीं की है तब आप मुझसे फूल गङ्गा भेजने की आशा क्यों करते हैं? लोगों ने समझ लिया कि भक्तजी अब आर्यसमाजी ही बन गये हैं।

बिरादरी ने क्या सोचा?—वहाँ से उठकर समीपवर्ती सम्बन्धियों ने विचार किया कि चौथे दिन फूल (अस्थियाँ) चुनकर हम अपने व्यय से गङ्गा भेज दें और भक्तजी को कुछ न कहें। इस विचार का भक्तजी को भी किसी प्रकार पता लग गया। भक्तजी ने निश्चय किया ऐसा नहीं होने दिया जाएगा। उसका उपाय भक्त नारायणदासजी ने यह किया कि तीसरे व चौथे दिन की मध्य की रात ही शमशान-भूमि में जाकर राखसहित अस्थियाँ उठाकर पास चलते राजवाहा (कुल्या) में डाल दीं और दिन निकलने से पूर्व ही अपने स्थान पर आ गये।

भक्तजी की निष्ठा की जीत—प्रातःकाल सम्बन्धी फूल चुनने के लिए श्मशान में गये, परन्तु वहाँ जाकर देखा कि वहाँ कुछ भी नहीं है और निराश होकर लौट आये।

भक्त नारायणदासजी ने आर्यसिद्धान्त की रक्षा की।

लाला गौरीशङ्करजी[१]

लालाजी दीनानगर, ज़िला गुरदासपुर-निवासी थे। आपने बाल-काल दीनानगर में ही बिताया। मिडिल पास करके आप गुरदासपुर स्कूल में प्रविष्ट हुए। दसवीं श्रेणी उत्तीर्ण करके नौकरी में लग गये। आप एकाउँटैण्ट थे। प्रथम आप शिमला में थे, वहाँ से अनेक स्थानों में स्थानान्तरित होकर गये। आपने प्रत्येक स्थान में आर्यसमाज का काम किया। लायलपुर, फीरोज़पुर, दीनानगर में आप आर्यसमाज के प्रधानपद पर भी सुशोभित रहे।

कभी घूस नहीं ली—आपका विभाग ऐसा था जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को घूस का अवसर मिलता है, परन्तु आपने इस विभाग में काम करते समय कभी घूस न ली। इससे जहाँ इनका जीवन बना वहाँ आर्यसमाज के काम को भी सहायता मिली।

---

१. द्रष्टव्य—'सार्वदेशिक' मासिक जुलाई १९४१ पृष्ठ २२६-२२७ पर।

यदि युद्ध के समय धन न कमाया तो फिर—आप गत महायुद्ध के समय लंडी कोतल में नियत थे। एक बिल जो नीचे से स्वीकृत हो चुका था जब आपके पास आया तो रुक गया। कुछ समय प्रतीक्षा करके बिलवाले सज्जन ने किसी को भेजा ताकि पता ले कि बिल का क्या बना? पता लेने वह इनके पास आया। आपने पूछने पर कहा आपका बिल आया, परन्तु पास होना कठिन है। उसने कई प्रकार से कहा, परन्तु कोई भेद न पड़ा। वे चले गये, तब एस०डी०ओ० आये, उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा यदि युद्ध के समय भी धन न कमाया जाए तो किस समय कमाया जाए। आपने कहा, "आप कमा लें, परन्तु यह बिल पास होना कठिन है। ये सज्जन मुसलमान थे। इन्होंने इनके अंग्रेज़ आफ़ीसर से यही बात कही। उन्होंने लालाजी को बुलाकर कहा आप बिल पास कर दें।

लालाजी ने कहा, आपकी आज्ञा से कर देता हूँ। तब बिल पास हो गया। धन प्राप्त होने पर एस०डी०ओ० इनके पास आया और १४००—रुपये के नोट देने लगा। आपने कहा, "मैं नहीं लेता।" उसने कहा, "लालाजी मैं अपनी इच्छा से देता हूँ। आप लेते क्यों नहीं हैं? आपने कहा, मेरा अधिकार नहीं है।"

उसने कहा, "जब मैं स्वयं देता हूँ तो आपका अधिकार पैदा हो गया।"

पाप से दूर ही—आपने कहा, "मेरा विश्वास है यदि मैं लूँगा तो मुझे हानि होगी, अतः आप इसे ले-जाइए मुझे ऐसे पाप कर्म से दूर ही रहने दीजिए।" वह बड़ा चकित हुआ और धन ले-गया।

इसके पश्चात् वह इष्ट-मित्रों से बातचीत में सर्वदा लाला गौरीशङ्करजी की और आर्यसमाज की प्रशंसा करता रहा।

स्वामी अनुभूतानन्दजी

स्वर्गीय स्वामी अनुभूतानन्दजी का देहावसान ८-४-१९४१ को चालीस वर्ष की आयु में आदमपुर द्वाबा में हो गया। आपकी संक्षिप्त जीवनी इस प्रकार है।

मानसा में जन्मे—आपका जन्म मानसा राज्य पटियाला में हुआ। आपके पिता का दिया नाम ठाकुरसिंह था। आप दलित वर्ग की चूहड़ा बिरादरी में जन्मे थे। आपके चाचा जलाल आणा ज़िला हिसार की सिरसा तहसील में रहते थे। ये उनके पास भी जाया करते थे। वहाँ मुंशी कालेखाँ (वर्तमान महाशय कृष्णचन्द्रजी) उसी ग्राम के निवासी

थे। आपकी उनसे भेंट हो गई। उनके सत्संग से आप आर्यसमाजी बन गये। अब संस्कृत पढ़ने की लगन लग गई।

आर्यसमाज बनाकर दिखा दिया—जगरांवाँ, ज़िला लुधियाना, फगवाड़ा राज्य कपूरथला, दयानन्द उपदेशक विद्यालय, लाहौर और तातारपुर जिला होश्यारपुर में आप पढ़ते रहे। जब तातारपुर पढ़ते थे तो एक दिन एक पण्डित ने आर्यसमाजियों के यत्न करने पर भी यहाँ आर्यसमाज न बना, ऐसा कहा। आपने कहा यत्न ही न किया होगा। पण्डितजी ने कहा आप करलें। आपने कहा, अच्छा! आपने पढ़ाई छोड़ दी और एक खड्ड के किनारे पत्थरों पर बैठ गये। भिक्षा लाकर उदरपूर्ति की और आसन वहाँ जमाया। शीत, आतप, वर्षा, सब वहाँ पत्थरों पर बैठकर सहन की। इस तपस्या से प्रभावित होकर एक राजपूत ने आपको भूमि दी और उन्होंने भिक्षा से धनसंग्रह करके आर्य-मन्दिर और कूप लगवाया और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम रजिस्टर्ड करवाया।

उसके पश्चात् इसी प्रकार की घटना गढ़दीवाला में हो गई। एक ब्राह्मण से इन्होंने पूछा यहाँ आर्यसमाज है? उसने इनको और आर्यसमाज को अपशब्द कहे। आप उस समय तो चले गये, पुनः आकर बैठ गये और आनेवालों को गीता सुनाने लगे। अन्त में वहाँ भी भूमि लेकर मन्दिर बनवाया जो प्रोदिशक सभा के नाम करवा दिया।

अनन्तर आदमपुर द्वाबा में आर्यसमाज-मन्दिर बनवाया। उसकी भूमि पहले क्रय की जा चुकी थी।

दलित बालकों को शिक्षा दिलवाई—आपने दलित परिवारों में जन्मे अनेक लड़कों को बी०ए०, एफ०ए० और मैट्रिक पास करवाया। कई एक को संस्कृत पढ़ाई। वैद्यक की शिक्षा दिलाई। उनको योग्य बनाकर काम पर लगवाया।

वार्तालाप व सत्संग से जीवन पलट दिये—इतना काम किया परन्तु भाषण कभी नहीं दिया। कथा कभी नहीं की। साधारण बातचीत किया करते थे। अनेक स्त्री-पुरुषों को आर्य बनाया।

इससे उन व्यक्तियों को शिक्षा लेनी चाहिए जो प्रचार करना चाहते हैं।[१]

---

१. यह लघु लेख 'सार्वदेशिक' मासिक के जून १९४१ के अंक में पृष्ठ २७१-२७२ पर छपा।

एक मूक प्रचारक स्वामी निजात्मानन्दजी[१]

स्वर्गीय स्वामी निजात्मानन्दजी आर्यसमाज के एक मूक कार्यकर्ता थे। आपका निधन १९-३-१९४१ को देहली में हुआ। आपका जन्म ज़िला गुजराँवाला के एक ग्राम में हुआ था। आपने वहीं अपने ज़िले में उर्दू मिडल तक पढ़ाई की। तत्पश्चात् पटवारी, कानूनगो, मुनसरम[२] के पद पर अंग्रेजी क्षेत्र, भावलपुर, जम्मू, पटियाला अलवर, भरतपुर तथा जोधपुर में रहे। आप जोधपुर में आर्यसमाजी बने।

कभी व्याख्यान नहीं दिया—आपका पूर्व नाम परशुराम था। आपने कभी व्याख्यान नहीं दिया, परन्तु आर्यसमाज का काम किया। आर्यसमाज सरगोधा का मन्दिर बनबानेवाले आप हैं। आर्यसमाज गंगानगर का मन्दिर आपने बनवाया। आर्यसमाज कालेकी में काम किया।

जम्मू राज्य में पाठशाला खोलकर कुछ वर्ष चलाई। आप वैद्य भी थे। विशेष रोगों की विशेष ओषधि आप जानते थे। आप जहाँ रहते थे ओषधि का कार्य करते थे। छीना जिला गुरदासपुर में आर्य प्रतिनिधि सभा की सम्पत्ति का उत्तम प्रबन्ध किया।

मृत्यु के समय आपकी आयु ८५ वर्ष की थी। देहली में भौतिक शरीर को छोड़ा। इस प्रकार आप मूक प्रचारक थे। प्रचार की इच्छा रखनेवालों को इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

[**विशेष टिप्पणी**—पूज्य स्वामी सर्वानन्दजी ने सम्पादक को अपने २५ मार्च १९९६ के पत्र में लिखा है कि यह संन्यासी बहुत तपस्वी थे। एक बोरी लपेट कर रहते थे। वे जब भी बच्छोवाली समाज, लाहौर के उत्सव पर आते तो स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज के दर्शन करने गुरुदत्त भवन अवश्य आते थे। इस महात्मा ने आदमपुर क्षेत्र के कई डाकुओं का सुधार किया। किसी समय द्वाबा में बहुत दक्ष चोर हुआ करते थे। रात्रि के समय चलती हुई बैल गाड़ियों के बैल चुराकर ले-जाया करते थे। यह भी एक कला थी। स्वामीजी इनसे बड़ा स्नेह किया करते थे।]

१. यह लेख 'सार्वदेशिक' मासिक के जून १९४१ के अंक में पृष्ठ २७१ पर प्रकाशित हुआ था।

२. यह अरबी भाषा का शब्द है। माल भिवाग में एक पदाधिकारी को मुनसरम कहा जाता था।

धर्मवीर वेदप्रकाशजी[1]

करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः।

निजाम राज्य के गुञ्जोटी कस्बा में फाल्गुन शुक्ला पाँच, शाके संवत् १८२७ को श्री दासप्पा का जन्म हुआ। उनकी माता का नाम रेवती बाई तथा पिता का नाम शिव बसप्पा था। श्री दासप्पा ने मराठी की सातवीं श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते गये उनमें धर्म की रुचि बढ़ती गई। धीरे-धीरे वे आर्यसमाज के सत्सङ्गों में जाने लगे तथा ऋषि के पूरे भक्त बन गये। आर्यसमाजी बनने के पश्चात् उनका नाम वेदप्रकाश रखा गया।

आर्यसमाज स्थापित करवा दिया—आर्यसमाज का प्रचार कार्य करने में उन्हें बहुत उत्साह था। उनके उत्साह का यह परिणाम हुआ कि गुञ्जोटी में आर्यसमाज की स्थापना हो गई। लाठी-तलवार आदि चलाने में वे बड़े निपुण थे। इसी से जब उनपर कई बार घातक आक्रमण हुए, वे अपनी रक्षा कुशलतापूर्वक करते रहे।

स्त्री-रक्षक—एक दिन उसने छोटेखाँ नाम के पठान को कहा कि पराई स्त्रियों को बुरी दृष्टि से मत देखा करो। तब से वह तथा अन्य मुसलमान उसके शत्रु बन गये। वेदप्रकाश ने पान की दुकान लगाकर हिन्दुओं की आवश्यकता को पूर्ण किया था। इससे चाँदखाँ नाम का पान-विक्रेता उससे बहुत ईर्ष्या करने लगा तथा उसका शत्रु बन गया।

मार्गशीर्ष चार संवत् १९९४ विक्रमी (१९३७ ई०) के दिन मुसलमानों ने मन्त्री आर्यसमाज के घर पर आक्रमण कर दिया। वेदप्रकाश को जब सूचना मिली, आव देखा न ताव निहत्था ही दौड़ पड़ा। मन्त्री के घर के पास दो तीन सौ मुसलमान ने उसे पकड़ लिया। आठ नौ व्यक्तियों ने मिलकर उसे गिराया और मार डाला।

जिस दिन उपर्युक्त आक्रमण हुआ था, पुलिस के अफ़सर ने गुञ्जोटी के प्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित हिन्दुओं को थाने पर बुलाकर बिठला लिया था। वधिकों पर अभियोग चला। उन्हें पहचान लिया गया। साक्षी भी मिले, परन्तु अभियुक्त निर्दोष समझकर छोड़ दिये गये। इसके पश्चात् हैदराबाद राज्य में धर्मवीरों के बलिदानों का ताँता लग

१. 'आर्यसमाज के महाधन' पुस्तक से।

गया। अत्याचारियों के घृणित अत्याचारों का नंगा नाच होने लगा और यह सब होना उपर्युक्त न्याय के रहते स्वाभाविक था।[1]

हुतात्मा धर्मप्रकाश जी[2]

ज़ुल्म की टहनी कभी फलती नहीं।
नाव कागज़ की कभी चलती नहीं॥

चाहे दारुण दुःख प्राप्त हो—महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा है, "जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें, इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।"

श्री धर्मप्रकाशजी के जीवन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि सम्भवतः उन्होंने अपने जीवन में उपर्युक्त वाक्य को चरितार्थ करने की चेष्टा की थी। आर्यसमाज में प्रविष्ट होने से पूर्व उनका नाम नागप्पा था। वे श्री सायवण्णाजी के सुपुत्र थे। उनका जन्म शाके १८३९ में कल्याणी ग्राम में हुआ था।

वे आत्म-रक्षा का प्रशिक्षण देते थे—कल्याणी किसी समय चालुक्यवंशी राजाओं की राजधानी थी। अब वह एक मुसलमान नवाब की जागीर है। मुसलमानों के प्राबल्य के कारण हिन्दू जनता को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था। धर्मप्रकाशजी एक तेजस्वी नवयुवक थे। उनकी भुजाओं में बल था। उन्हें मुसलमानों का हिन्दुओं पर अत्याचार असह्य प्रतीत हुआ। उन्होंने जहाँ अत्याचारियों को डाँटा वहाँ हिन्दू नवयुवकों को सङ्गठित कर उन्हें लाठी, तलवार आदि चलाना सिखाना प्रारम्भ किया।

मुसलमानों को अपने मुख का ग्रास छिन जाता हुआ दीखा। निर्बल हिन्दू सबल बन जाएँ, यह उन्हें कब सहन हो सकता था? धर्मवीर पर कई आक्रमण भी हुए, परन्तु अपनी वीरता से वे सदा

---

१. निजाम स्टेट में कभी भी आर्यों के किसी भी हत्यारे को व देवियों का अपहरण करनेवाले, हिन्दुओं के घर व दुकानें फूँकनेवाले मुसलमान को दण्डित नहीं किया गया, अतः निर्दोषों की हत्या करना एक सामान्य-सी बात थी। ये कुकृत्य राजाश्रय से होते थे।

२. स्वामीजी की पुस्तक 'आर्यसमाज के महाधन' से।

बचते रहे। ख़ाकसार पार्टी[1] को उनका जीवन समाप्त करने की चिन्ता सवार हो गई।

अन्त में ज्येष्ठ अमावास्या शोक १८६० तदनुसार २० जून १९३८ ई० को रात्रि के आठ बजे जबकि धर्मप्रकाशजी आर्यसमाज के सत्संग से लौट रहे थे, ख़ाकसारों ने एक गली में घेर कर बर्छी-भाले से उनका क्रूरतापूर्वक वध कर दिया। घातकों पर अभियोग चला, परन्तु निज़ामी कोर्ट ने उन्हें निर्दोष मुक्त कर दिया।

हुतात्मा शिवचन्द्रजी

श्री शिवचन्द्रजी का जन्म ३ मार्च सन् १९१६ को दुबलगुण्डी निज़ाम राज्य (अब कर्नाटक) में हुआ। उनके पूज्य पिता का नाम श्री अणव सप्पाजी था। सन् १९३५ में इन्होंने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, जिससे प्रसन्न होकर गवर्नमेण्ट ने इन्हें १६५ रु० का पुरस्कार दिया। इसके पश्चात् वे हुमनाबाद के स्कूल में अध्यापक का कार्य करते रहे। अवकाश के समय में इन्होंने आर्यसाहित्य का भी अनुशीलन करना आरम्भ किया। आर्यसिद्धान्तों ने इनपर गहरा प्रभाव डाला और आपने यज्ञोपवीत धारण करके आर्यसमाज में प्रवेश किया।

पं० नरेन्द्रजी की सत्प्रेरणा का फल—पं० श्री नरेन्द्रजी मन्त्री आर्यप्रतिनिधि सभा हैदराबाद ने उनकी कार्य कुशलता तथा सदाचार आदि सद्गुणों पर मुग्ध होकर उन्हें आर्योपदेशक बनने की प्रेरणा की। उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर कार्य आरम्भ कर दिया। हुमनाबाद, सदाशिवपेठ आदि स्थानों में जहाँ मुसलमानों का प्राबल्य है, वहाँ आर्यसमाज तथा पाठशालएँ स्थापित कीं।

हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन में भी श्री शिवचन्द्रजी ने बहुत कार्य किया। जिन दिनों सत्याग्रह शिविर शोलापुर में था, उन दिनों राज्य से सत्याग्रहियों को लाने का कार्य यही करते थे। सत्याग्रह के समाचार लाना भी इन्हीं का कार्य था।

दिनाङ्क ३-३-१९४२ को जबकि आर्यसमाज हुमनाबाद, होली के अवसर पर शोभायात्रा निकाल रहा था, धर्मान्ध मुसलमानों ने

---

१. खाकसार पार्टी एक मुस्लिम संगठन था। इसे बेलचा पार्टी भी कहा जाता था। दंगे करना-कराना व शान्त प्रजा को आतंकित करना ही इस दल का एकमेव काम था।

आक्रमण कर दिया। उन्होंने श्री शिवचन्द्रजी के साथ श्री लक्ष्मणरावजी, श्री रावजी राव इंगड़े तथा श्री नरसिंहरावजी को गोली का निशाना बनाया। ये तीनों व्यक्ति भी समाज के विशेष भक्त थे। इस प्रकार श्री शिवचन्द्रजी धर्म पर बलिदान हो गये।[१]

धर्मवीर नाथूरामजी

आग में पड़कर भी सोने की दमक जाती नहीं।
काट देने से भी हीरे की चमक जाती नहीं॥

महाराज नाथूरामजी हैदराबाद (सिंध) के निवासी थे। उनका जन्म एक सम्भ्रान्त सारस्वत ब्राह्मण परिवार में १ अप्रैल सन् १९०४ में हुआ था। पिताजी का शुभ नाम पं० श्री कीमतरायजी था। श्री नाथूरामजी अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। उनके पिता उनसे अत्यधिक स्नेह करते थे तथा किसी प्रकार से उन्हें कष्ट नहीं होने देते थे। बचपन से ही वे मनमौजी ढंग से चलनेवाले तथा गम्भीर प्रकृति के थे।

सन् १९२७ में श्री नाथूरामजी आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हुए। उनके पिताजी तथा अन्य सम्बन्धी उनसे आर्यसमाजी होने कारण बहुत रुष्ट हुये, परन्तु उन्होंने इसकी परवाह नहीं की तथा कार्य में लगे रहे। सन् १९२९ में हैदराबाद सिंध में आर्ययुवक समाज खुली तो आप उसके उत्साही सदस्य बन गये। उस समय आर्यसमाजियों और सनातनियों के बीच तनातनी थी। इसमें श्री नाथूरामजी ने अच्छा भाग लिया। वे सनातन धर्मियों का समाधान किया करते थे।

एक मिर्ज़ाई शरारत—सन् १९३१ में अहमदिया (मिर्ज़ाई) मत की एक अञ्जुमन बनी। इस अञ्जुमन ने कुछ विज्ञापन निकाले, जिसमें हिन्दूधर्म और हिन्दूवीरों पर गन्दे आक्रमण व आक्षेप किये गये थे। इन्हें पढ़कर श्री नाथूरामजी के हृदय में मन्यु का वेग उत्पन्न

विशेष टिप्पणी—शस्त्रों से सुसज्जित हत्यारों के बहुत बड़े दल ने निहत्थे, परोपकारी, शान्तमूर्त्ति धर्मवीर को हुमनाबाद के समाज-मन्दिर से थोड़ी दूरी पर एक गली में घेर कर उनकी हत्या कर दी। केवल २९ वर्ष की आयु में पं० लेखराम बलिदान पर्व के सप्ताह में इस प्राणवीर ने पं० लेखराम के पथ पर वीरतापूर्वक जान वार दी। लोग रंग से होली खेलते हैं। आर्यवीरों ने अपने रक्त की धार देकर जाति को जिलानेवाली होली खेलकर स्वर्णिम इतिहास बनाया। —'जिज्ञासु'

१. पूज्य स्वामीजी के 'आर्यसमाज के महाधन' से।

हुआ, जोश का तूफ़ान उठा। उन्होंने इसका उत्तर देने का निश्चय किया। उन्होंने 'तारीख़े इस्लाम' का उर्दू से सिन्धी में अनुवाद किया। फिर विज्ञापन रूप से एक ट्रैक्ट निकाला जिसमें मुसलमान मौलवियों से बहुत से प्रश्न पूछे गये थे। ये दोनों पुस्तकें निःशुल्क बाँटी गईं। उन पुस्तकों के प्रकाशन के पश्चात् मुसलमानों में खलबली मच गई। उन लोगों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर उनके विरुद्ध आन्दोलन किया। मुल्ला-मौलवी और मुस्लिम सम्पादकों ने भी महाराज नाथूराम के विरुद्ध खूब भाग लिया। इन हलचलों और विरोध का यह परिणाम हुआ कि गवर्नमैण्ट ने सन् १९३३ में उनपर अभियोग चलाया। श्री नाथूरामजी ने अभियोग लड़ते हुए यह सिद्ध किया कि वह पुस्तक ईसाइयों की लिखी हुई है। मैंने उसका अनुवादमात्र किया है। इसके साथ ही इस पुस्तक के औचित्य में उन्होंने अन्य पुस्तकों के भी प्रमाण प्रस्तुत किये थे।[1] परन्तु मजिस्ट्रेट ने उन्हें सैशन सुपर्द किया। सैशन जज ने उन्हें डेढ़ वर्ष की जेल एवं हज़ार रुपया जुर्माने का दण्ड दिया। इस दण्ड को सुनकर सारा सिंध काँप उठा। सैशन जज के निर्णय के विरुद्ध चीफ कोर्ट में अपील की गई।

हत्यारे ने कैसे घात लगाया?—२० सितम्बर सन् १९३४ का दिन था। सारा कोर्ट मनुष्यों से भरा था। तिल धरने को भी स्थान नहीं था। महावीर श्री नाथूरामजी के अभियोग के सम्बन्ध में उस दिन जजों की बेंच को अपना निर्णय देना था। लोगों के मनों में नाना प्रकार की विचारधाराएँ उत्पन्न हो रही थीं। सभी अपना-अपना अनुमान लगा रहे थे। अकस्मात् ही कोर्ट में एक दर्दनाक भयङ्कर चीत्कार सुनाई दी। चारों ओर हाहाकार मच गया। एक मतान्ध पठान अब्दुल कय्यूम ने जो श्री नाथूरामजी के पास बैठा था—उनके पेट में (घात लगाकर) छुरा भौंक दिया। उनकी अन्तड़ियाँ बाहर निकल पड़ीं। धर्मवीर श्री नाथूरामजी उसी समय अमरपद को प्राप्त हो गये।[2]

---

१. महाराज नाथूरामजी की हत्या के लिए मुसलमानों को उकसानेवाले कादियानी मिर्ज़ाइयों के किसी भी साप्ताहिक ने मूल पुस्तक के लेखक व प्रकाशक ईसाइयों के विरुद्ध एक भी शब्द न लिखा। —'जिज्ञासु'

२. उनके धर्मबन्धु वयोवृद्ध गुजराती आर्यपुरुष श्री शिवगुणबापू तब उनके साथ ही बैठे ते। उन्होंने मुझे बताया कि हुतात्मा ने कोर्ट में अपने पक्ष में बड़े अकाट्य प्रमाण दिये। वे बहुत साहसी, निर्भीक और पं० लेखरामजी के समान सच्चे धर्मरक्षक युवक थे। —'जिज्ञासु'

चीफ़ जज ने सीस झुकाकर सम्मान किया—हत्यारे को तत्काल पकड़ लिया गया। डॉक्टरी जाँच के पश्चात् श्री नाथूरामजी की अर्थी निकाली गई। चीफ जज ने सीस झुकाकर उनका सम्मान किया। शवयात्रा के साथ सहस्त्रों लोग थे। बड़ी धूमधाम के साथ उनकी शवयात्रा निकाली गई और वैदिक रीत्यानुसार अन्त्येष्टि संस्कार किया। सारे सिंध में हड़ताल हुई।

हत्यारे का शव कबर से निकाला गया—हत्यारे पर अभियोग चला और उसे फाँसी का दण्ड दिया गया। इस सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है जो मुसलमानों की मनोवृत्ति का दिग्दर्शन कराती है। हत्यारे अब्दुल कय्यूम की लाश कबर से उखाड़ी गई और कराची के मुसलमानों ने उसकी अर्थी का जलूस निकाला। मज़हबी जोश से वे इतने उन्मत्त हो रहे थे, इतना हो-हल्ला कर रहे थे कि प्रतीत होता था—मानो सारा नगर लूटा जाएगा। उनकी इन प्रवृत्तियों से आशङ्कित होकर अधिकारियों ने सेना बुलाई और नगर को इनके आतंक-सङ्कट से मुक्त किया।

वीर नाथूराम रक्षानिधि स्थापित की गई—धर्मवीर नाथूरामजी की स्मृति में आर्यप्रतिनिधि सभा सिंध, आर्यसमाज कराची और सुशीला भवन कराची ने कुछ धन संग्रह किया। प्रतिनिधि सभा की एक निधि आजपर्यन्त नाथूराम रक्षानिधि के नाम से प्रसिद्ध है, जिससे सङ्कटग्रस्त सिंधी भाइयों की सहायता की जाती है।

वे धीरवीर बलिदानी आर्य वीर थे—श्री नाथूरामजी एक धीर, वीर, उत्साही आर्य थे। न्याय-मार्ग पर चलते हुए वे किसी का भय नहीं करते थे। उनमें स्वाभिमान की मात्रा थी। हिन्दूजाति पर किये गये अश्लील आक्रमणों का उन्होंने वीरता से उत्तर दिया। प्राण दिये पर मान नहीं दिया। अपने बलिदान से उन्होंने सिंध में आर्यजाति का मस्तक ऊँचा कर दिया है। उनका जीवन सिन्ध के आर्ययुवकों के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रहा है।[१]

श्री ठाकुरदत्तजी धवन[२]

श्री ठाकुरदत्त जी धवन अपने समय में आर्यसमाज के मुख्य कार्यकर्ताओं में से एक थे। आप डेरा इस्माईलखाँ के निवासी थे

१. यह लेख स्वामीजी की पुस्तक 'आर्यसमाज के महाधन' से लिया गया है।
२. यह लेख सन् १९४१ में छपा था।

और ई०यू०सी० पद पर नियुक्त थे।[१] ज़िला करनाल में आप वर्षों तक रहे। सरकारी काम के साथ-साथ आप आर्यसमाज का काम भी किया करते थे। हरियाणा प्रान्त में आर्यसमाज का जो प्रचार है, उसमें आपका उद्योग भी सम्मिलित है।[२]

जब करनाल में जज थे—जिस समय आप करनाल में जज थे, उस समय लंच के समय में आप समाज-विषयक लेख लिखा करते थे। आपने उर्दू और अंग्रेज़ी भाषा में आर्यसमाज-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी थीं। उस समय आपकी शिकायत हुई कि राय ठाकुरदत्तजी न्यायालय के समय में आर्यसमाज का काम करते हैं। इस शिकायत पर आपसे उत्तर माँगा गया। आपने अपने वक्तव्य में इस बात को स्वीकार किया कि वे न्यायालय में बैठकर उस समय आर्यसमाज का भी काम करते हैं, परन्तु आपने स्वीकार करते हुए अपनी अवस्था इस प्रकार वर्णन की थी, अन्य आफ़ीसर मध्याह्नोत्तर में लंच खाते हैं, जितना समय वे भोजन खाने में लगाते हैं मैं उसी लंच के समय को भोजन में न लगाकर आर्यसमाज की सेवा में लगाता हूँ। मैं लंच के समय भोजन नहीं करता हूँ। वह न्यायालय के काम का समय नहीं है, अतः मैं उस समय आर्यसमाज का काम करके किसी दोष का भागी नहीं हूँ।

जब सिंधु नदी में बाढ़ आ गई—जिस समय आपने पैन्शन ली उस समय डेरा इस्माईलखाँ में जाकर रहने लगे। उस समय सिन्धु नदी में बाढ़ आ गई। डेरा इस्माईलखाँ सिन्धु तट पर होने से नगर को बहा ले-जाने का भय उपस्थित हो गया। अधिकारियों ने नगर में बाँध बँधवाने की घोषणा करके नगर-निवासियों को प्रेरणा की कि सब नगरवासी चलकर सिंधु-तट पर बाँध बाँधें और उस दिन उच्च अधिकारियों को भी निरीक्षण के लिए आना था। नगर के सामान्य व्यक्ति बाँध बाँधने के स्थान पर गये और मिट्टी खोदकर टोकरियों से उठाकर बाँध बनाने लगे और प्रतिष्ठित व्यक्ति उच्च उधिकारियों की प्रतीक्षा में मार्ग पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगे।

जब अधिकारियों का स्वागत किया गया—जिस समय उच्च कर्मचारी आये उस समय उन प्रतिष्ठित नगर-निवासियों ने उनका

---

१. ई०यू०सी० अशुद्ध छपा है। वे ई०ए०सी० थे। तब इससे बड़ा पद किसी भारतीय के लिए प्राप्त था ही नहीं।

२. श्री ठाकुरदत्तजी करनाल नगर में ही थे। अपनी न्यायप्रियता, निष्पक्षता, दक्षता व धर्म-सेवा के लिए बहुत प्रसिद्धि पाई।

स्वागत किया, परन्तु ठाकुरदत्तजी धवन उनमें नहीं थे। पदाधिकारी ने पूछा राय ठाकुरदत्तजी कहाँ हैं? उन लोगों ने शिकायत की कि वे बड़े अभिमानी हैं, नहीं आये हैं। उच्च कर्मचारी ने यह सब-कुछ सुना और कुछ न कहकर सबके साथ जहाँ बाँध बनाना था और नगर-निवासी बना रहे थे, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर राय ठाकुरदत्तजी से भेंट हुई, क्योंकि राय ठाकुरदत्तजी वहाँ लोगों को मिट्टी की भरी टोकरियाँ उठवा रहे थे और लङ्गोट बाँधे उनके साथ काम कर रहे थे।

यदि सब लोग ठाकुरदत्तजी जैसे हों—यह दृश्य देखकर उस उच्च कर्मचारी ने उन प्रतिष्ठित नगर-निवासियों को सम्बोधित करके कहा—"यदि आप लोग भी राय ठाकुरदत्तजी की भाँति यहाँ आकर काम करते तो मार्ग पर बैठकर मेरी प्रतीक्षा करने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा होता।" यह सुनकर और राय ठाकुरदत्तजी के कृत्य को देखकर सब लज्जित हो गये।

प्रत्येक व्यक्ति को राय ठाकुरदत्तजी की घटनाओं से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

ऋषि-दर्शन[१]

अर्थात् स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज के कुछ प्रेरक प्रसङ्ग—स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी जब पढ़ते थे उस समय उन्होंने ऋषि के दर्शन किये। आपके पिता लाला नानकचन्दजी बरेली में कोतवाल थे। आप उनके पास रहते और वहाँ ही पढ़ते थे। उस समय महर्षिजी का बरेली में आगमन हुआ और वैदिक प्रचार आरम्भ हुआ। पौराणिक दल में खलबली मचना स्वाभाविक था। कोई उन्हें नास्तिक, कोई ईसाई, कोई अंग्रेज पादरियों का वेतनभोगी कहने लगे। मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्दजी का पूर्व नाम) को कहा गया कि आप इस साधु के पास न जाएँ।[२] मुंशीरामजी उस समय स्वयं नास्तिक अर्थात्

---

१. यह लेख 'सार्वदेशिक' मासिक के अप्रैल १९४१ के अंक में पृष्ठ ८७-८९ पर छपा।

२. सार्वदेशिक में छपे इस लेख की कुछ पंक्तियाँ अवश्य छूट गई हैं। मुंशीराम जब काशी में थे तब वहाँ एक नास्तिक जादूगर की बहुत प्रसिद्धि थी। मुंशीराम व उसके बड़े भाई को उनकी माता घर से बाहर निकलने ही नहीं देती थी। उसे भय था कि मेरे पुत्र कहीं जादूगर के फन्दे में न फँस जाएँ। बरेली में तो पिताजी ने आग्रहपूर्वक मुंशीराम को ऋषि-दरबार में कुछ सुनने भेजा था ताकि इस तत्त्ववेत्ता ऋषि को सुनकर पुत्र आस्तिक बन जाए। कैसी विचित्र बात है। —'जिज्ञासु'

अनीश्वरवादी थे।

जब महर्षि ने निरुत्तर कर दिया तो—आप एक बार किसी प्रकार दर्शन के लिए गये और ईश्वर-विषय पर ही शङ्का-समाधान किया। मुंशीरामजी की युक्तियों का उत्तर दिया गया। जब वह निरुत्तर हो गये तो कहने लगे युक्ति तो और कोई नहीं है, परन्तु ईश्वर पर विश्वास अब भी नहीं हुआ। तब ऋषि ने कहा मेरा काम तो युक्तियों का व प्रश्नों का उत्तर देना था। विश्वास तो आपको स्वयं ही जब होगा तब होगा।

आस्तिक तो बन गये, परन्तु—उसके पश्चात् आप आस्तिक तो बन गये, परन्तु अभी आर्यसमाजी नहीं बने, जिसका मुख्य कारण आपकी अवस्था ही प्रतीत होता है। जो सम्बन्धी ऋषि-दर्शन से रोकते थे, उनको क्या पता था कि मुंशीरामजी का जीवन-कार्य ही ऋषि-मन्तव्यों का प्रचार करना हो जाएगा।

जब सत्यार्थप्रकाश का पाठ किया—आपने जब वकालत पढ़नी आरम्भ की, उस समय धर्म के अंकुर हृदय में उत्पन्न हुए और धर्म के जिज्ञासु बन गये। उस समय किसी के बतलाने पर सत्यार्थप्रकाश की आवश्यकता पड़ी और आप आर्यसमाज में सत्यार्थप्रकाश क्रय करने गये। उस समय मन्त्रीजी व पुस्तकाध्यक्ष कोई न मिला। अन्त में आपने सत्यार्थप्रकाश लिया और पढ़ने लगे। उसमें इतने निमग्न हुए कि उसे समाप्त करके ही विराम किया। उस प्रथम पाठ से ही आपके विचार बदल गये और आप आर्यसमाजी हो गये।

और सम्बन्धी जान गये कि आप आर्यसमाजी हैं—आर्यसमाजी होने का परिचय सम्बन्धियों को एक घटना से लगा। आप जालंधर आये। वहाँ राय साहिब शालिग्रामजी की कन्या से आपका विवाह हुआ था और रायज़ादा भक्तरामजी बैरिस्टर आपके साले लगते थे। उनके गृह पर आपका भोजन था। उन्होंने पूर्ववत् मांस बनाया। जिस समय लाला मुंशीरामजी भोजन के लिए बैठे तो आपके सामने भी मांस का कटोरा आया। आपने उसे उठाकर सामने की भित्ति से दे मारा। श्री भक्तरामजी ने कहा, ''आप पहले तो खाते थे, अब यदि नहीं खाना था तो उठा देते। इस प्रकार नष्ट क्यों किया?'' आपने उत्तर दिया, ''अब सर्वदा मुझे स्मरण रहेगा कि किसी समय ऐसा किया था और इससे भविष्य में प्रवृत्ति न होगी और आपको पुनः देने का उत्साह भी न होगा। इसलिए इस समय यही करना

उचित था।''

लागी कैसी लगन—वकालत पास करके आपने जालंधर में काम आरम्भ किया और लाला मुंशीराम से महात्मा मुंशीरामजी बने। आप प्रतिष्ठित वकील, प्रतिष्ठित व्यक्ति के जामाता थे, परन्तु आर्यसमाज के कार्य की लग्न इतनी थी कि आप प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व हाथ में एकतारा लेकर गलियों में दोहे गाते फिरा करते ते। पंजाब में गानेवालों को 'वच्छो वालीये' के नाम से पुकारा जाता है। दोहे अनेक प्रकार से गाये जाते हैं।

पाथर पूजे हर मिले तो मैं पूजूं पहाड़।
पाथर से चक्की भली जिसका पीसा खाय संसार॥
कौड़ी कौड़ी जोड़के किया लाख करोड़।
जाती बारी सुधरया ली तड़ागी तोड़॥

आप इस प्रकार गीत गाते फिरा करते थे और अनजान स्त्रियाँ यह समझकर कि यह भी माँगनेवाला है, इनको अन्न व आटा दे देती थीं। आप उसे लाकर आर्यसमाज में दे देते थे। आप सुनाया करते थे कि कई बार माताएँ अपनी कन्या व पुत्रवधू से कहती थीं, ''बेचारा प्रतिदिन आता है, उसे कुछ दे दो।''

आपने आर्यसमाज के जो काम किये हैं वे सबको विदित हैं और उनके लिए पाठकों को उनका जीवन-चरित्र पढ़ना चाहिए।

हुतात्मा सरदार घुन्नासिंहजी[१]

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥

अच्छे बुरे सभी पर ही एक सङ्कट का दिन आता है।
दुःख-सुख चक्र-समान फिरे, यह सभी विधान विधाता है॥

एक विशेष टिप्पणी—महर्षि दयानन्द से ईश्वर की सत्ता विषयक अपने शङ्का-समाधान के बारे में स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, 'महाराज! आपकी तर्कना-शक्ति बड़ी प्रबल है। आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिया कि परमेश्वर की कोई सत्ता है।' महाराज पहले हँसे, फिर गम्भीर स्वर से कहा, देखो, तुमने प्रश्न किये, मैंने उत्तर दिये—यह युक्ति की बात थी। मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास परमेश्वर पर करा दूँगा? तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगे।'
—'जिज्ञासु'

१. यह लेख स्वामीजी महाराज की पुस्तक 'आर्यसमाज के महाधन' से लिया गया है।

घुन्नासिंहजी का जन्म स्थान लताला, ज़िला लुधियाना है। यह ग्राम खंगूड़े जाटों का है। इनका जन्म संवत् १९३८ सन् १८८१ ईस्वी में हुआ था।[1] घुन्नासिंह अपने पिता थम्मणसिंह के एकमात्र पुत्र थे। इनकी माता का नाम श्रीमती भागण देवी था। सात वर्ष की आयु में इनको ग्राम में ही एक उदासी साधु के पास गुरुमुखी पढ़ने भेजा गया। इन्होंने कुछ गुरुमुखी का अभ्यास किया, पश्चात् घरवालों ने पढ़ाई बन्द कर दी। नौ वर्ष की आयु में इनका विवाह शेरसिंहजी की कन्या जयकौर देवी से ग्राम बुरज लिटा में हो गया और चौदहवें वर्ष में मुकलावा अर्थात् गौणा हो गया।

इनकी गृहस्थी—इनके छह सन्तानें हुईं जिनमें चार पुत्र तथा दो कन्याएँ थी। ज्येष्ठ पुत्र का देहान्त अठारह वर्ष की आयु में आर्यस्कूल लुधियाना में जबकि वह दसवीं श्रेणी में पढ़ता था, हो गया। उसका नाम भजनसिंह था। शेष पुत्र बख्तावरसिंह, सुखदेव, भलभद्र अब हैं। बड़ी कन्या का विवाह डॉक्टर इन्द्रसिंह, ग्राम बुरज नकलीया में हुआ जो सुखपूर्वक गृहस्थ बिता रही है। छोटी कन्या का स्वर्गवास हो गया।

सुदक्ष कृषक परिवार से—इनके गृह में कृषि का काम होता था। ग्राम में इनका परिवार कृषि-पटु समझा जाता था, अतः इनके पिता ने अपने पिता श्री भगवानसिंहजी की सम्मति से घुन्नासिंह को कृषि के काम में लगा लिया। अब यह कृषक हो गये।

आर्यसमाजी कैसे बने?—सत्सङ्ग का अभ्यास आरम्भ से ही था। अब वह पं० यमुनादास एवं पं० विष्णुदासजी की सङ्गति में आने लगे। यह दोनों महानुभाव उदासी साधु थे। पं० यमुनादासजी अपने समय के उत्तम वैय्याकरण तथा नैय्यायिक माने जाते थे। पं० विष्णुदासजी अपने काल के अद्वितीय वैद्य थे। पं० यमुनादासजी तो बाहर आर्यसमाजी हो गये और पं० विष्णुदासजी को सरदार हरिसिंह भैणीरोडावाले ने प्रथम पं० लेखरामजी की पुस्तकें, पश्चात् ऋषि की पुस्तकें देकर आर्यसमाजी विचारों का बनाया। इनकी सङ्गति से सरदार घुन्नासिंह आर्यसमाजी हुए। आर्यसमाजी होकर देवनागरी लिपि सीखी तथा हिन्दीभाषा पढ़ी। आर्यसमाज के ग्रन्थ नाममात्र पढ़े, परन्तु

---

१. घुन्नासिंहजी स्वामीजी के बाल्यकाल के सखा थे। श्री स्वामीजी इनसे पाँच वर्ष बड़े थे। स्वामीजी का ननिहाल लताला में था। यहीं पूज्य स्वामीजी का पालन-पोषण हुआ था। —'जिज्ञासु'

देशवासी या भारतमित्र के ग्राहक नियमपूर्वक रहे। इससे संसार के सामान्य ज्ञान में विशेष वृद्धि हो गई।

वे इतने सिद्धान्तनिष्ठ थे—इनके आर्यसमाजी होने का ज्ञान इनकी पूज्या माता के देहावसान पर हुआ, क्योंकि इन्होंने उस समय किसी पौराणिक कृत्य का अनुष्ठान नहीं किया।

सूद नहीं लेते थे—इनका परिवार सम्पन्न था। ये किसी को रुपया देकर उसपर वृद्धि (सूद) नहीं लेते थे। जिसको जितना रुपया देते थे उससे उतना ही लेते थे। यह रीति इनके पितामह के समय से चली आयी थी। जिस समय गृहकार्य इनके हाथ में आया उस समय इन्होंने धन को भूमि में न दबाकर डाकघर में रखकर उसपर वृद्धि प्राप्त की। पिता की मृत्यु के पश्चात् आपने कृषि का कार्य छोड़कर पंसारी की दुकान करली। साथ ही ज़ख्मों, आँखों की बीमारियों और छोटे-छोटे रोगों की ओषधियाँ भी निःशुल्क देनी आरम्भ कर दीं।

वैदिक संस्कारों के लिए दृढ़ता—इन्होंने अपनी कन्या का विवाह वैदिक रीति से किया। किसी पण्डित के न आने पर यह विवाह श्री पं० विष्णुदासजी उदासीन ने ही पढ़ाया था। इस विवाह में घुन्नासिंह ने सुधार भी किया। बारात में एक वर दूसरा उसका भाई, तीसरा नापित और चौथा गाड़ीवान् ये चार ही व्यक्ति आये थे। रात को विवाह करके प्रातःकाल कन्या को विदा कर दिया। कोई दहेज न दिया। इससे लोगों को इनके आर्यसमाजी होने का विश्वास हो गया और वह आर्यसमाजी प्रसिद्ध हो गये।

प्रचार में सक्रिय रहे—यदि समीप में किसी आर्यसमाज का उत्सव हो, जैसे लुधियाना, रायकोट आदि में तो यह सम्मिलित हुआ करते थे। लताला में भी इन्होंने एक या दो उत्सव करवाये थे।

कन्या पाठशाला के लिए सङ्घर्ष करना पड़ा—ग्राम में कुछ अकाली भी थे। अब यह आर्यसमाजी हो गये थे। दोनों अपने पक्ष के पोषक थे। गाँव में एक कन्या पाठशाला खुली। इसपर पक्ष बन गये। घुन्नासिंह का दल कहता था कि धनराशि नियत कर दो। जो उतना धन दे उसका एक सदस्य हो। अकाली पार्टीवाले कहते थे कि जितने घुन्नासिंह दल के सदस्य हों उतने ही हमारे हों, परन्तु धन हम एक चौथाई देंगे और तीन चौथाई ये दें। यद्यपि इस प्रकार समझौता असम्भव था, परन्तु घुन्नासिंह ने स्वीकार कर लिया और यह शर्त

रखी कि पाठशाला में स्त्री अध्यापिका हो। उस समय पाठशाला का अध्यापक एक अकाली था। अकालियों ने इस शर्त को स्वीकार नहीं किया और समझौता टूट गया। घुन्नासिंह दल ने स्त्री अध्यापिका रखकर एक अलग कन्या पाठशाला खोली। घुन्नासिंह के प्रभाव से वह पाठशाला खूब चल निकली। पीछे इस पाठशाला को इन लोगों ने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधीन कर दिया। अब तक यह पाठशाला अच्छी प्रकार से चल रही है और मिडिल बन चुकी है। पाठशाला में स्त्री अध्यापिका रखने की शर्त पर समझौता टूट जाने पर कई अकाली इनके दल में आ मिले थे, जिनमें हवलदार वीरसिंह, रसाईदार भोलासिंह, जमादार चन्ननसिंह मुख्य थे। ये लोग घुन्नासिंह के मित्र बन गये और पाठशाला के कार्यों में सहयोग दिया।

उन्हें पता था कि उनकी हत्या का षड्यन्त्र रचा जा रहा है—अनुचित हठ को लेकर पराजित होने पर अकालियों ने अपने यश को कलङ्कित करनेवाला षड्यन्त्र रचा। उन्होंने घुन्नासिंह के जीवन को समाप्त करने के लिए एक व्यक्ति को तैयार कर लिया। सामान्य रूप से घुन्नासिंह को भी पता लग गया। यह बात श्री रामलालजी, प्रिंसिपल आर्य स्कूल लुधियाना ने बतलाई। मास्टरजी ने बतलाया, एक दिन घुन्नासिंह ने उनसे कहा, अकाली कुछ बिगड़ रहे हैं। आर्यसमाज और पाठशाला मुख्य विषय हैं। मुझे सन्देह है कि कभी आक्रमण होगा। मास्टरजी को तब भी विश्वास न हुआ। उन्होंने कहा, "ऐसा असम्भव है।" परन्तु कुछ दिन पीछे जिस दिन घुन्नासिंहजी शहीद हुये तब उनकी बात पर विश्वास हुआ, परन्तु उससे अब कोई लाभ न था।

षड्यन्त्रकारी चार हत्यारे—अकालियों ने जिस व्यक्ति को उकसाया था उसका घर घुन्नासिंह की दुकान के पास ही था। घुन्नासिंह भी कुछ सावधान रहते थे। इस व्यक्ति ने ग्राम का घोगड़ नाम का एक मुसलमान साथ मिला लिया और दो व्यक्ति किसी अन्य ग्राम के बुलाये।

हँसते-हँसते मृत्यु का वरण—घटनावाले दिन घुन्नासिंह प्रातःकाल ही अर्थात् उषाकाल में शरबत बनाने के लिए दुकान पर गये। वे अभी ताला ही खोल रहे थे कि वचनसिंह ने पीछे से आकर पकड़ लिया। वह उससे छूटना ही चाहते थे तब तक दूसरे साथी ने आकर केसों से पकड़ लिया। ये खींच कर अपने मकान में ले

गये। वहाँ इनके दो और भी सहायक थे। चारों ने मिलकर डण्डों, लाठियों से मारना आरम्भ किया। हल्ला सुनकर जनता आ भी गई। कुछ व्यक्ति उस घर पर पहुँचे। उस समय वे लोग उन्हें छोड़कर भाग गये। घुन्नासिंह के पास सबसे प्रथम ज्वालासिंह दरज़ी पहुँचा। उसने बतलाया वीर घुन्नासिंह ने जो सबसे पहली बात कही वह यह थी—

"ज्वालासिंह देख ले आँख में आँसू नहीं हैं।"

नश्वर देह का शान्तिपूर्वक त्याग—लोग घुन्नासिंह को उठाकर बाहर लाये। यदि वचनसिंह आदि न भागते तो लड़ाई हो जाती, उनके भाग जाने से न हुई। शकट पर घुन्नासिंह को डालकर थाना डेहलों को ले-चले। जब छपार पहुँचे तो घुन्नासिंह ने कहा—"ठहर जाओ।" शकट ठहराया गया। कोई पाँच मिनट के पश्चात् वीर घुन्नासिंह ने कहा, "अब काम समाप्त है।' पूछा क्या है? उसने कहा, "अब आत्मा शरीर छोड़नेवाला है।" यह कहकर आँखें बन्द की और एक बार ओ३म् कहा तथा वीर आत्मा ने भौतिक शरीर से ११ मई सन् १९३० के प्रातःकाल विदा ली।

डॉक्टरी परीक्षा में डाक्टर ने लिखा था—हाथ, टाँग, कमर, छाती की कोई भी अस्थि साबुत नहीं (टूटने से नहीं बची) है। आश्चर्य है, यह कुछ समय भी कैसे जीवित रहे।

आह! एक-एक अस्थि तोड़ी गई—अभियोग में वचनसिंह भाग गया। घोगड़ पकड़ा गया। दूसरे दो व्यक्तियों को ठीक-ठीक पहचाना ही नहीं गया। घोगड़ कालापानी (अण्डमान) भेजा गया। वहाँ जाकर कुछ समय पश्चात् उसकी वहीं मृत्यु हो गई। वचनसिंह १६ मई सन् १९३१ को फ़िरोजपुर ज़िले में पकड़ा गया और उसे फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दिया गया। वचनसिंह की सज़ा को बदलने के लिए जस्टिस जयलाल की कोर्ट में लाहौर अपील की गई। जस्टिस जयलाल ने १२ जनवरी सन् १९३२ को निर्णय लिखते हुए अन्त में लिखा है—जहाँ तक आज्ञा का प्रश्न सम्बन्ध रखता है, वचनसिंह का व्यवहार किसी अनुकम्पा के योग्य नहीं है। यह स्पष्ट है कि पहली शत्रुता के कारण से उसने तीन व्यक्तियों को अपने साथ मिलाया ताकि इस मरनेवाले पर पाशविक आक्रमण किया जाए और उसे लगभग मार दिया। यह सच है कि सिर पर सिवाय एक के और कोई घाव नहीं था, परन्तु यह बात अपील करनेवाले की सहायता नहीं करती। इसके विरुद्ध आक्रमण की निपुणता को सिद्ध करती

है। मेरी सम्मति में मृत्यु की आज्ञा वचनसिंह के सर्वथा अनुरूप है। मैं उसकी अपील ख़ारिज (निरस्त) करता हूँ और पहले आदेश को पुष्ट करता हूँ।

हत्यारे का पश्चात्ताप—वचनसिंह के मित्र से ज्ञात हुआ कि वह खेद प्रकट करता था कि मैं अकालियों के बहकावे में आ गया। मैंने घुन्नासिंह को निरपराध मारा है। मुझे उनसे कोई शत्रुता न थी।

वे धुन के धनी थे—हुतात्मा घुन्नासिंह उत्तम मित्र और भयानक शत्रु था। वह धैर्यवान्, निडर, अपनी धुन का पक्का और धर्म-प्रेमी था। सम्भव है धर्म-प्रेम माता से लिया हो और शेष गुण पिता से।

धैर्य

इनका ज्येष्ठ पुत्र भजनसिंह आर्यस्कूल लुधियाना में पढ़ता था। वह रुग्ण हो गया। रोग से उसे मूर्च्छा हो गई। यह पं० विष्णुदासजी को साथ लेकर आये। लुधियाना के सिविल सर्जन पं० गोकुलचन्द्रजी, वैद्य श्री तारवाला हकीम प्रभृति अनेक वैद्य बुलाये गये, परन्तु लाभ न हुआ। उन दिनों मैं अकस्मात् लुधियाना आया। पता लगने पर उनसे मिला। वे तथा परिवार से उनके भ्राता हरनामसिंहजी वहाँ थे। भजन मूर्च्छित था। दूसरे दिन मैं बोर्डिंग हाऊस में गया। मास्टर श्री कृष्णजी भी वहाँ थे। रोगी की जिह्वा कुछ शुष्क हुई थी। श्री कृष्णजी को बादाम रोगन लाने भेजा। वह लगाया गया, परन्तु कुछ पल पश्चात् भजन के आत्मा ने शरीर को छोड़ दिया। स्कूल उस दिन बन्द हो गया। उसका अन्त्येष्टि-संस्कार किया गया। घुन्नासिंह से मैंने पूछा, लताला रेल से जाना है अथवा पैदल? उन्होंने उत्तर दिया, "पैदल जाने से शीघ्र पहुँच जाऊँगा, अतः पैदल जाऊँगा।"

एक विचित्र घटना यह भी—मैंने मास्टर रामलालजी से पूछा भोजन तैयार है? उन्होंने कहा, "घर में नहीं है, परन्तु बोर्डिंग हाऊस में है।" मैंने कहा, घुन्नासिंह को भोजन करवा दो। वे बोले इस अवस्था में मेरे मन में भोजन के लिए कहने का उत्साह नहीं है। यह काम मैंने अपने ऊपर लिया। मैंने घुन्नासिंह से कहा—"यदि पैदल जाना है तो भोजन कर लें, क्योंकि आप बीस मील पैदल जाएँगे, घर में

---

१. धन्य थे वीर घुन्नासिंह और स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज भी धन्य थे जिनका अपने भक्तों पर इतना प्रभाव था कि उनके कहने पर पिता ने युवा पुत्र के दाहकर्म की क्रिया करके भोजन कर लिया। हमारे पास तो टिप्पणी के लिए शब्द ही नहीं हैं। —'जिज्ञासु'

होना आरम्भ होगा, आपको भोजन किसने देना है?''

उन्होंने मुझसे कहा, ''आपकी इच्छा है कि मैं भोजन कर लूँ?''

मैंने 'हाँ' में उत्तर दिया। उसने कहा, ''बहुत अच्छा।'' भोजन करके वे ग्राम को चल दिये। चलते समय मुझे केवल ये शब्द कहे, ''कुछ समय के लिए बोर्डिंग हाऊस से सम्बन्ध विच्छेद हो गया।''

प्रिंसिपल रामलालजी का उपालम्भ—उनके जाने पर श्री रामलालजी ने मुझे तो उलाहना दिया कि आपने संन्यासी होने से ही भोजन के लिए कह दिया और घुन्नासिंह के धैर्य की प्रशंसा की कि अठारह वर्षीय युवक पुत्र का देहान्त हुआ, चिकित्सा पर मुक्त-हस्त होकर व्यय किया, परन्तु अन्त्येष्टि के समाप्त होते ही बीस मील की यात्रा के लिए चल दिये और भोजन भी कर लिया।

दृढ़ता

आर्यसमाजी होने पर माताजी का संस्कार, कन्या का विवाह वैदिक रीति से किया। अपनी दुकान पर से अस्पृश्यता मिटाकर रख दी। सब विरोध सहकर सब-कुछ किया। अन्त समय में जबकि लाठियों की मार से अस्थि-पंज़र चूर हो गया था तब भी कहते हैं, ''देख ले आँख से अश्रुपात नहीं हुआ है।'' कठोर वेदना को सहकर दृढ़ता का परिचय दिया।

धर्म-प्रेम

ग्राम में आर्यसमाज का प्रचार किया। वैदिक धर्म का झण्डा ऊँचा रखने का पूर्ण प्रयत्न किया। कार्यक्षेत्र में सफल हुए। उस सफलता से चिढ़कर ही विपक्षियों ने प्राण लेने का षड्यन्त्र किया। वीर आत्मा ने वैदिक धर्म के लिए वीरगति प्राप्त की।

मौनी प्रचारक पं० विष्णुदासजी

पं० विष्णुदासजी उदासी साधु थे। आपके चाचा भी साधु थे। उनका नाम रामदास था। वे इनको बाल्यावस्था में अपने पास ले-आये और कुछ समय के पश्चात् बाबा दयारामजी का शिष्य बना दिया।

लताला ग्राम कभी विद्या का केन्द्र होता था—बाबा

विशेष टिप्पणी—इसी महान् विद्वान्, तपस्वी साधु पूज्य विष्णुदासजी ने स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरीखे शूरशिरोमणि, बलिदानी नेता समाज को दिये।
—'जिज्ञासु'

दयारामजी ग्राम लताला, ज़िला लुधियाना में निवास करते थे। आप संस्कृत-पाठशाला भी चलाते थे, जिसमें मध्य सिद्धान्तकौमुदी तक व्याकरण और रघुवंशादि साहित्य और चिकित्सा तथा तर्क-संग्रह न्याय के ग्रन्थ तथा शीघ्रबोध आदि ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। पण्डित विष्णुदासजी का जन्म स्थान मालेरकोटला राज्य में कुठाला नाम का ग्राम था। इन्होंने प्रथम लताला में गुरुजी के पास अध्ययन किया फिर हरिद्वार में जाकर पढ़ा और भागवतपुराण की कथा आश्रम में करने लगे। पश्चात् महाभारत की कथा का आरम्भ किया। आप इनमें से किसी एक की कथा किया करते थे।

चिकित्सा-शास्त्र का विशेष अध्ययन—तत्पश्चात् अमृतसर में बाबा ज्ञानप्रकाशजी से चिकित्सा पढ़कर बनारस गये, वहाँ अमृतशास्त्रीजी से चिकित्सा का पाठ समाप्त किया। यह शास्त्रीजी के अन्तिम विद्यार्थी थे और शास्त्रीजी के सुपुत्र त्र्यंबकशास्त्रीजी[1] काशी में वैद्य हैं। पश्चात् यूनानी चिकित्सा पढ़ी। इस प्रकार आप अपने समय के अपने प्रान्त में उत्तम वैद्य और वैद्यक के अध्यापक माने जाते थे।[2]

पं० लेखरामजी की लेखनी का जादू—लताला ग्राम के समीप भैणीरोडा ग्राम है। वहाँ चौधरी हरिसिंहजी आर्यसमाजी थे। उन्होंने आपको 'तक़ज़ीब बुराहीने अहमदिया' नाम की पुस्तक दी। उसे पढ़कर आपके विचार आर्यसमाज की ओर झुके। पश्चात् आपने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़ी। उनके पढ़ने पर आप आर्यसमाजी हो गये। दैवात् उनके गुरु-भ्राता पण्डित यमुनादासजी संस्कृत व्याकरण और न्याय के पण्डित थे। वे भी आर्यसमाजी बाहर ही हो गये थे। उनसे इनको सहायता मिली। उनकी घटना फिर कभी लिखूँगा। तब पण्डितजी कुछ समय के लिए जालन्धर चले गये।

महात्मा मुंशीराम का सत्सङ्ग—उस समय महात्मा मुंशीरामजी जालन्धर रहते थे और गुरुकुल प्रारम्भिक पाठशाला के रूप में जालंधर में था। उस समय आपने वहाँ निवास करके आर्यसमाज के सिद्धान्त

---

१. श्री त्र्यंबक शास्त्री अपने समय के एक अद्वितीय वैद्य थे। उनके द्वारा असाध्य रोगों से छुटकारा पानेवाले उनके आयुर्वेद के चमत्कारों की कई रोचक घटनाएँ सुनाते हैं। —'जिज्ञासु'

२. पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्दजी महाराज ने भी पं० विष्णुदासजी से वैद्यक का ऊँचा ज्ञान प्राप्त किया था। —'जिज्ञासु'

समझे और वहाँ से ही आपने शुद्धि का दृश्य देखकर उसे स्वीकार कर लिया।[1] इस प्रकार आप उस समय से आर्यसमाज के प्रचारक बन गये, परन्तु व्याख्यान कभी न देते थे। लताला आश्रम में पढ़ने के लिए साधु पर्याप्त संख्या में आते थे। आप उनपर आर्यसमाज का प्रभाव डालते थे। आप केवल बातचीत से ऐसा किया करते थे और बातचीत का विचित्र ढङ्ग था।

एक समय पण्डित गङ्गेश्वरानन्दजी ने उनसे प्रार्थना की थी कि महाराज आप वृद्ध हैं, हमारे पूज्य हैं, आप जितना समय चाहें हमारे पास ठहर सकते हैं, परन्तु बातचीत न किया करें, क्योंकि आपकी बातें श्रोताओं को आर्यसमाजी बनाती हैं। तब आपने उत्तर दिया था यह मेरा कर्त्तव्य है मैं उसे करूँगा, आप कहें तो मैं आपके पास से चला जाता हूँ। स्मरण रहे कुम्भ पर पण्डितजी उनके पास ठहरे हुए थे।[2]

वे ऐसे वीतराग महात्मा थे—जब आपके पूज्य गुरु आपको उत्तराधिकारी बनाने लगे तो आप आश्रम छोड़कर अमृतसर चले गये, परन्तु आश्रम का महन्त फिर भी उनको बनाया गया। उस समय अमृतसर में एक साधु ने उनको लेखक के सामने कहा था कि आप मूर्ख हैं जो आश्रम छोड़कर चले आये हैं। आपने उत्तर दिया था, "मुझे कोई व्यसन नहीं है। साधारण भोजन-वस्त्र से मैं सन्तुष्ट हूँ। यदि मुझे यह भी न मिलेगा तो मरना अच्छा।" आप त्यागी महात्मा थे।

आर्यसमाज पर सब-कुछ वार दूँगा—जब आप महन्त बने तब कई लोगों ने कहा था आप आर्यसमाज को छोड़ दें, तब महन्ती मिलेगी। आपने उत्तर दिया था मैं आर्यसमाजी हूँ आप चाहें मुझे महन्त बनाएँ या न बनाएँ मैं आर्यसमाज को न छोड़ूँगा। आप फिर भी महन्त बनाये गये। तब आपने प्रचार का क्षेत्र बढ़ा लिया। आपने बिना व्याख्यान दिये शतशः साधु और सहस्त्रों गृहस्थ आर्यसमाजी बनाये उस समय यह आश्रम साधुओं में आर्यसमाजी आश्रम था।

---

१. यह पं० लेखरामजी के जीवनकाल की बात है। तब पण्डित जी जालन्धर में ही निवास करते थे। बलिदान से पूर्व लाहौर रहने लगे तब भी जालन्धर महात्माजी के पास आते-जाते रहते थे, सो पं० विष्णुदासजी को महान् धर्मवीर पं० लेखरामजी का सत्सङ्ग भी प्राप्त रहा। —'जिज्ञासु'

२. पं० गङ्गेश्वरानन्द प्रसिद्ध उदासी संन्यासी हुए हैं।

जब उदासियों की रक्षा की—जब अकालियों का उदासियों से मकानों के लिए विवाद हुआ तब इस आश्रम में उदासियों के लिए अत्यन्त उत्तम काम किया। उस समय पं० विष्णुदासजी और पं० रामस्वरूपजी इन विवादों में अग्रणी थे। उस समय पंचायती अखाड़े के एक महन्त ने उनसे कहा था पण्डितजी हमें यह आशा न थी आप उदासियों के लिए इतना परिश्रम करेंगे। आपने उत्तर दिया था यदि झगड़ा आर्यसमाजियों से होता तो मैं आर्यसमाजी होता, परन्तु आपका विवाद अकालियों के साथ है, इसलिए मुझे आपका काम करने में कोई कठिनाई नहीं है।

आर्यसमाज व काँग्रेस को कई सेवक दिये—आपसे मिलनेवाले साधुओं में से इस समय कई आर्यसमाज का काम कर रहे हैं। ग्राम में जाटों को आर्य बनाया। उनमें से सरदार घुन्नासिंहजी हुतात्मा इनके ही अनुयायी थे। इनके मिलनेवाले कई काँग्रेस में काम करते हैं।

इस प्रकार आपने बिना व्याख्यान के प्रचार किया, अतः आप मौनी प्रचारक थे। आप संस्कृत-उर्दू के विद्वान् थे, उत्तम वैद्य थे, त्यागी थे। आश्रम में ओषधि के साथ-साथ भोजन, पथ्य भी निर्धनों को आश्रम से देते थे। भोजन के समय जो आवे उसे भोजन मिलता था। निवास-स्थान मिलता था और बातचीत में आर्यसमाज की बातें सबको सुनाते थे। आर्यसमाज की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे।

आर्यसमाज के क्षेत्र में शायद ही उनको कोई जानता हो। जिस समय आपका देहावसान हुआ तो संस्कार-विधि द्वारा आपका संस्कार किया गया।

आर्यसमाज को अपने इस प्रकार के कार्यकर्ताओं का नाम स्मरण करना चाहिए और उनके कार्य से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।[1]

सत्य

डॉ० चिरञ्जीवजी के सम्बन्ध में एक और लेख

स्वर्गीय डॉ० चिरञ्जीवजी आर्यसमाज के मुख्य कार्यकर्ताओं में से एक थे। वे आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री पद पर रहे। उस समय उन्होंने सभा के कार्यालय का सब कार्य आर्यभाषा में लिखना व

१. यह लेख 'सार्वदेशिक' मासिक के जून सन् १९४१ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

लिखवाना आरम्भ किया। आप एक समय आर्यसमाज बच्छोवाली लाहौर के प्रधान थे। उस समय जब आर्यसमाज का उत्सव हुआ तो अपील के पश्चात् कोषाध्यक्ष ने आपको रिर्पोट की कि धन इतना जमा हुआ है। आपने उसकी घोषणा की कि उत्सव पर इतना धन प्राप्त हुआ है। सायंकाल को जब आप लेखा-जोखा देखने लगे तो पता लगा कि उस जोड़ में कुछ ऐसा धन भी सम्मिलित है जो वास्तव में उत्सव का इस वर्ष का दान नहीं है—जैसे कोई गत वर्ष का दिया गया वचन इस वर्ष (पूरा करे) आकर अब प्राप्त हुआ और कुछ धन शतांश का भी इसमें जोड़ दिया गया।

आपने रात्रि उत्सव में पुनः घोषणा की कि सायंकाल जो मैंने धन की घोषणा की थी वह ठीक नहीं थी, वास्तव में धन उससे न्यून है और ठीक-ठीक राशि बता दी।

तब आर्यसमाजियों ने आपसे कहा, "प्रधानजी! आपने ठीक नहीं किया। जब घोषणा हो चुकी थी अब चुप रहना ही ठीक था। आपने धन घटाकर समाज के काम को लाभ नहीं पहुँचाया।" आपने उत्तर दिया अब तो जनता यही कह सकती है कि आर्यसमाज के उत्सव पर धन न्यून प्राप्त हुआ है, यदि मैं ठीक-ठीक न बताता तो जनता यह कहती आर्यसमाज का प्रधान झूठ बोलता है। मैं आर्यसमाज के प्रधान को झूठा कहने की अपेक्षा धन का न्यून होना अच्छा मानता हूँ। इसका उत्तर आर्यों के पास भी कुछ नहीं था।

आप कैसे सत्यप्रेमी थे, उसका दूसरा परिचय न्यायालय में मिला जब उनके वकील ने कहा आप ऐसा कहें। आपने कहा जो सत्य है मैं वही कहूँगा उसके उलट न कहूँगा। न्यायाधीश ने अपने फैसले में उनके सत्य-भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

आपने अपनी सन्तान के नाम सत्यव्रत, सत्यकाम, सत्यवती, सत्यनिष्ठा रखे जिसमें से सत्यवती का बाल्यावस्था में देहान्त हो गया था, शेष तीन सन्तानें आजकल देहली में हैं।

मौनी प्रचारक पं० यमुनादासजी

पं० यमुनादासजी बाबा दयारामजी ग्राम लताला, जिला लुधियाना-निवासी के शिष्य थे। आप उदासी साधु थे। आप प्रज्ञाचक्षु (जन्मान्ध) थे। प्रज्ञाचक्षु होने के कारण आपको बाल्यावस्था में ही बाबा दयारामजी की भेंट किया गया और आपको सर्वप्रथम आश्रम में आटा छानने का काम दिया गया। आप यह काम करके विद्यार्थियों

का पाठ भी सुना करते थे।

आटा छानते-छानते छात्रों का पाठ कण्ठस्थ कर लेते— कुछ समय बाद पता चला आप तीव्र बुद्धि होने से कौमुदी का पाठ कण्ठस्थ कर लेते हैं, अतः आपको विद्यार्थियों में सम्मिलित किया गया। आपने लघुकौमुदी समाप्त करके अमृतसर आकर पढ़ाई आरम्भ की। फिर बनारस चले गये। बनारस में व्याकरण समाप्त किया और न्याय आरम्भ किया, पश्चात् कुरुक्षेत्र में आकर रहे।

कुरुक्षेत्र में आर्यसमाज का रङ्ग चढ़ा—आप कुरुक्षेत्र में ही आर्यसमाजी बने और आर्यसमाज का काम वार्तालाप से किया करते थे। आप अपने विद्यार्थियों को पुराणों की कथाएँ सुनाकर वेद पर श्रद्धा उत्पन्न करते थे। आपके विद्यार्थी प्रायः आपसे व्याकरण पढ़ा करते थे, क्योंकि आप व्याकरण के अपने समय के अच्छे विद्वान् थे। आपने अनेक विद्यार्थियों को आर्यसमाजी बनाया। अन्त समय तक आप आर्यसमाज का प्रचार करते रहे।

आपने अमृतसर में धूम मचा दी—अमृतसर में आप रामहलीयाँ की धर्मशाला में रहते थे। उस समय आपने ब्राह्मणों को आर्यसमाजी बनाया। उनमें पं० धनीरामजी, पृथ्वीचन्द्रजी, पं० रौणक़रामजी आदि विद्यार्थी थे और आर्यसमाज के प्रचार से उदासी उनको आर्यसमाजी कहने लग गये थे और आपने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया था कि मैं आर्यसमाजी हूँ।

यदि प्रत्येक अध्यापक उनका अनुकरण करे तो अब भी अच्छा प्रचार हो सकता है।

भक्त रेमलदासजी[१]

भक्त रेमलदासजी मुलतान-निवासी थे और आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के मुख्य कार्यकर्ताओं में से एक थे। आपने आर्यसमाज में आर्यभाषा देवनागरी लिपि का प्रचार बलपूर्वक किया। लेखक ने उनके दर्शन कई आर्यसमाजों के उत्सवों पर किये। वे एक प्रसिद्ध आर्यसमाज के उत्सव पर पधारे और बिना व्याख्यान दिये लौट गये। अधिकारियों, आर्यसमाजियों ने बहुतेरा बल लगाया, परन्तु आपने व्याख्यान न दिया।

वे कैसे हिन्दी प्रेमी थे—उनका नियम था कि निजि पत्र-

१. यह लेख 'सार्वदेशिक' मासिक के सितम्बर १९४१ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

व्यवहार आर्यभाषा देवनागरी लिपि में करते थे। आर्यसमाजी भी इस बात से परिचित थे, इसलिए उनके साथ पत्र-व्यवहार देवनागरी लिपि में किया गया। उन्होंने उत्सव में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया और उत्सव पर आये, आने पर पता लगा कि उत्सव के विज्ञापन देवनागरी में न छापकर उर्दू में ही छापे हैं। इससे उनको बड़ा कष्ट हुआ और उन्होंने कहा मैं आपके यहाँ व्याख्यान न दूँगा और न दिया।

देवनागरी की उपेक्षा से दुःखी हुए—मैंने उन्हें पूछा आप देवनागरी लिपि के विषय में क्या चाहते हैं? उन्होंने बताया आर्यसमाज को अपना व्यवहार देवनागरी लिपि में करना चाहिए। यदि अन्य लिपि का आश्रय लेना ही हो तो प्रथम देवनागरी लिपि लिखकर पश्चात् अन्य लिपि का प्रयोग करें, जैसे इन्हीं विज्ञापनों में यदि ये देवनागरी के साथ उर्दू छापते तो मुझे कोई आपत्ति न होती, परन्तु इन्होंने देवनागरी को स्थान ही नहीं दिया है। दुकानों के बोर्डों के विषय में उनका विचार था कि बोर्ड के ऊपर देवनागरी लिपि होनी चाहिए और अंग्रेज़ी व उर्दू नीचे हों।

यदि आर्यसमाजी उनका अनुकरण करते तो अब तक देवनागरी लिपि का प्रचार अब से कहीं अधिक होता। अब भी यदि उनका

विशेष टिप्पणी—भक्त रेमलदासजी पर स्वामीजी का लेख प्रकाशित हुआ तो आर्यनेता प्रो० शिवदयालुजी ने भी भक्तजी पर एक संक्षिप्त लेख दिया। अगस्त सन् १९४१ में सार्वदेशिक मासिक में प्रकाशित इस लेख में चार विशेष घटनाओं का उल्लेख है। ये चारों यहाँ संक्षेप से दी जाती हैं।
(१) जब वैदिक यन्त्रालय, अजमेर आर्यसमाज के हाथ से निकलने लगा तो सब समाजों ने आपके नाम का प्रस्ताव करके आपको अजमेर भेजा। आपके परिश्रम व प्रबन्ध-कुशलता से यन्त्रालय की रक्षा व उन्नति हुई।
(२) आप डी० ए० वी० मिडिल स्कूल के बोर्डिंग हाऊस के सुपरिण्टेण्डेण्ट रहे और उनके कार्यकाल में बहुत बड़ी संख्या में विद्यार्थी सन्ध्या में सम्मिलित होते थे।
(३) जब कन्या महाविद्यालय को एक अच्छे विद्वान् व प्रबन्ध में सहायक की आवश्यकता पड़ी तब भी आप ही पर सबकी दृष्टि पड़ी। वहीं घोर परिश्रम के कारण आपका निधन हुआ।
(४) आप बहुत स्वाध्यायशील थे। आपका अपना विशाल पुस्तकालय था। ऋषि-कृत ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन किया। उनका जीवन पवित्र था। निष्काम, कर्मठ व प्रभावशाली समाजसेवी थे। आर्यसमाज के अनमोल रत्न थे।

—'जिज्ञासु'

कहना मानकर निज पत्र-व्यवहार देवनागरी लिपि में करने लग जाएँ तो परिणाम उत्तम निकल सकता है।

डॉ० श्री चिरञ्जीव भारद्वाज[१]

डॉ० श्री चिरञ्जीवजी का परिवार श्यामचौरासी (जिला होश्यारपुर) का रहनेवाला था, परन्तु आपके पूज्य पिता श्री हरगोविन्दपुर में काम करते थे, अतः आपका बाल्यकाल वहाँ व्यतीत हुआ और आपने प्रथम शिक्षा भी वहाँ ही प्राप्त की। जब आप लाहौर आये तो आर्यभाषा और देवनागरी से अनभिज्ञ थे। लाहौर आकर ही आर्यभाषा और देवनागरी लिपि सीखी।

आप जब आर्यप्रतिनिधि सभा के मन्त्री बने तब सब कार्य उर्दू लिपि में होता था। आपने कहा जब उपनियमों में महर्षि ने प्रत्येक आर्य को आर्यभाषा व संस्कृत सीखने का आदेश दिया है तब सभा में उर्दू लिपि क्यों?

उन्होंने सभा में सब काम देवनागरी लिपि में होने का विधान करवाया। उस समय से आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब में सब कार्य देवनागरी लिपि में होता है। अब भी कोई-कोई आर्यसमाज अपना काम उर्दू लिपि में करते हैं, उनको स्वर्गीय आत्मा चिरञ्जीवजी और आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब का अनुकरण करना चाहिए।

महात्मा मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी)[२]

महात्माजी 'सद्धर्म प्रचारक' साप्ताहिक पत्र निकालते थे। यह पत्र प्रथम फ़ारसी (उर्दू) लिपि में था।[३] एक समय महात्माजी ने विचार किया कि आर्यसमाज का पत्र देवनागरी लिपि में होना चाहिए

विशेष टिप्पणी—श्री स्वामीजी के एक साप्ताहिक लेख से पता चला कि जब डॉ० चिरञ्जीवजी सभा के मन्त्री चुने गये तो आपने ही शिवरात्रि को 'ऋषि-बोध पर्व' कहने की परम्परा चलाई। यह भी उनकी एक अविस्मरणीय देन है। —'जिज्ञासु'

१. यह संक्षिप्त लेख 'सार्वदेशिक' के जून सन् १९४१ के अंक में प्रकाशित हुआ।

२. यह लेख 'सार्वदेशिक' के जून सन् १९४१ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

३. 'सद्धर्म प्रचारक' की लिपि फ़ारसी थी, भाषा हिन्दी थी। इस लोकप्रिय साप्ताहिक ने पंजाब को एक नई शैली दी, जिसे ला० लाजपतराय के शब्दों में 'महात्मा मुंशीराम शैली' कहा जाता था।

तब सद्धर्म प्रचारक देवनागरी में कर दिया गया। उस समय आर्यसमाज में देवनागरी लिपि का इतना प्रचार न था जितना अब है, इसलिए महात्माजी को हानि भी उठानी पड़ी और सद्धर्म प्रचारक का जो बल पूर्व था उसमें भी न्यूनता आ गई, परन्तु महात्माजी अपनी धुन के पक्के और आर्यसमाज के उपनियमों आदि के अत्यन्त प्रेमी थे, अतः उन्होंने अपना पत्र देवनागरी लिपि में ही रखा।[१]

और भी पत्र निकाले—अन्य समय में आपने देहली से दो पत्र निकाले, तेज (उर्दू में) जिसके सञ्चालक श्री देशबंधुजी हैं, अर्जुन (देवनागरी में) जिसके सञ्चालक पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति हैं। आपने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रधानपद भी सुशोभित किया था।

दूसरे पत्र भी ऐसा करें तो हितकर है—पंजाब में जो पत्र आर्यजाति के सज्जनों के हाथ में हैं उनको महात्माजी का अनुकरण करना चाहिए। वे अपने पत्र देवनागरी लिपि में निकालें। यदि ऐसा न कर सके तो साप्ताहिक, मासिक कुछ-न-कुछ तो देवनागरी में निकाला करें ताकि इस लिपि का प्रसार अधिक हो।

भक्त रेमलदास, डॉ० चिरञ्जीव तथा महात्मा मुंशीराम तीनों ही आर्यसमाज के प्रतिष्ठित सेवक व नेता थे। इनका अनुकरण करने से आर्यजाति का लाभ है, अतः पाठकवृन्द को चाहिए कि उनका अनुकरण अवश्य करें।

समाज-प्रेमी—पं० श्री पूर्णानन्दजी[२]

बाल्यकाल में साधु बने—पण्डितजी का जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध था। वहाँ की दीवान बिरादरी में आपने जन्म लिया, छोटी आयु में आप संन्यासी हो गये। संन्यासी होकर आप पढ़ने के

विशेष टिप्पणी—श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी को १९२६ में धर्म पर बलिदान होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके इस जन्म व पूर्वजन्मों के किन्हीं अत्युत्तम कर्मों का फल था कि उन्हें ऐसी मृत्यु का वरण करने का गौरव प्राप्त हुआ। यदि वे कुछ समय और जीवित रहते तो वे दक्षिण भारत से अंग्रेजी में Liberator नाम का पत्र निकालते। वे इसकी तैयारी कर चुके थे।

—'जिज्ञासु'

१. हिन्दी में सद्धर्म प्रचारक पढ़ने के लिए श्री सन्तराम बी०ए०-जैसे अनेक व्यक्तियों ने हिन्दीभाषा सीखीं। —'जिज्ञासु'

२. पं० श्री पूर्णानन्दजी ने पं० लेखराम, महात्मा मुंशीराम आदि महापुरुषों के साथ बहुत ठोस व प्रशंसनीय कार्य किया। —'जिज्ञासु'

लिए बनारस गये। उस समय आप आर्यसमाज के विरोधी दल के नेता थे। वहाँ आपको एक बार विशूचिका (हैजा) ने आ पकड़ा। उस समय आपकी एक संन्यासी ने बड़ी सेवा की। जब आप अच्छे हो गये तो उनके कहने से एक बार उनके साथ आर्यसमाज में पहुँच गये। आपके जाने का जब और साधुओं को पता लगा तो यह चर्चा हो गई कि पूर्णानन्दजी आर्यसमाजी हो गये हैं। पूछने पर आपने उत्तर दिया, मैं आर्यसमाज के सत्सङ्ग में तो गया था, परन्तु मैं आर्यसमाजी नहीं हुआ। भला! वे यह कब मानते थे। जब फिर आपसे पूछा गया तो आपने उत्तर दिया, ''हाँ, हो गया हूँ''। यह है आर्यसमाजी बनने की कथा।

सिन्ध में प्रचार—बनारस में विद्या समाप्त करके आप पञ्जाब में स्वामी पूर्णानन्दजी के नाम से प्रचार करने आये और कई साल तक प्रचार करते रहे। पुराने आर्यसमाजियों ने उनको प्रथम स्वामीरूप में ही देखा था। काम करते समय आपको सिन्ध में भी जाना पड़ा, क्योंकि उस समय सिन्ध और बिलोचिस्तान का प्रचार भी आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब द्वारा ही होता था। वहाँ जाने पर पुराने सम्बन्धी भी मिल गये, उन्होंने अपना काम करना था और किया। जिसका फल यह हुआ कि स्वामी पूर्णानन्दजी पण्डित पूर्णानन्दजी बन गये और सिन्ध में ही आपने विवाह कर लिया। आप पञ्जाब सभा में अन्त समय तक उपदेशक रहे।

पुत्र का निधन—एक बार आप आर्यसमाज के उत्सव पर गये हुए थे। तब आपको घर से तार मिला कि आपका पुत्र रोगी है, आप शीघ्र आइए। उधर आर्यसमाज में शास्त्रार्थ की बातचीत हो रही थी आपने उत्तर दे दिया कि उत्सव के पश्चात् आ जाऊँगा। अब शास्त्रार्थ का समय आ गया, आप शास्त्रार्थ में लगे हुए थे, जब तार मिला कि आपके पुत्र का देहान्त हो गया है, आपको मन्त्रीजी ने शास्त्रार्थ समाप्त होते ही वह तार सुनाया, तब आपने घर तार भेज दिया और पत्र लिख दिया, जो होना था वह हो गया, अब मैं अगले प्रोग्राम पर जा रहा हूँ मेरे आने की अब आवश्यकता नहीं है और अगले प्रोग्राम पर चले गये।

आर्यनेताओं से कहा—अन्त समय में जब आप रोग-शय्या पर पड़े थे तो लेखक, महाशय कृष्णजी, पं० ठाकुरदत्तजी आदि बटाला में उनसे मिलने गये। जिस समय हम वहाँ गये और बातचीत हुई

तो उन्होंने कहा आप दैवयोग से आ गये हैं, मेरी वसीयत भी लिख लें।[१]

धर्मानुराग—आपने जो वसीयत लिखवाई उसका भाव यह था, मेरी धर्मपत्नी को व्ययार्थ प्रतिमास धन दिया जाए, मेरी कन्या को कन्या महाविद्यालय जालन्धर में पढ़ाया जाए और उचित समय पर विवाह किया जाए, यदि मेरा जामाता और मेरी लड़की वेदप्रचार का काम करें तो इनको मेरे धन से कुछ धन भी दिया जाए, यदि वे वेदप्रचार के अतिरिक्त जीविकार्थ और काम करें तो सभा उचित समझे तो कुछ दे दे वा न दे। यह व्यय करके और धन जो शेष रहे वह सब आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब, वेदप्रचार में व्यय करे।

तनिक सोचिये—

पाठक इन दोनों बातों पर ध्यान दें

१. पुत्र रोगी है, आप उत्सव नहीं छोड़ते। पुत्र की मृत्यु होती है, आप वेदप्रचार के प्रोग्राम पर चल देते हैं, अपनी धर्मपत्नी के पास आना भी वेदप्रचार की दृष्टि से हेय मानते हैं।

२. गृहस्थी में जो धन व्यय हो गया उसके पीछे जो शेष रहा उसमें से कन्या की पढ़ाई और विवाह तथा धर्मपत्नी की जीविका पर कुछ व्यय करके शेष सब वेदप्रचार के लिए देते हैं।

---

१. यह स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी जैसे महान् व पूज्य नेता की विशेषता थी कि विपदा के समय वे विद्वानों का अता-पता करते थे। पं० मनसारामजी की अन्तिम वेला में भी आप उनका पता करने पहुँचे थे। महाराज के इसी मृदुल व्यवहार के कारण दीवाने धर्म पर निछावर होते रहे।

'जिज्ञासु'

अपने कर्तव्य को पहिचानो



२६ जनवरी के महोत्सव पर आयोजित मारीशस की सभा में पुस्तक के लेखक श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज एक विशाल जनसमूह के सम्मुख भाषण दे रहे हैं तथा जनता को अपने कर्तव्य-पालन का उपदेश कर रहे हैं ।